॥ श्रीहरिः ॥

नारी-शिक्षा

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

॥ श्रीहरिः ॥

नारी-शिक्षा

१ सती-माहात्म्य

(१)

अनुव्रजन्ती भर्तारं गृहात् पितृवनं मुदा।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्॥
व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते विलात्।
एवमुत्क्रम्य दूतेभ्यः पतिं स्वर्गं व्रजेत् सती॥
यमदूताः पलायन्ते तामालोक्य पतिव्रताम्।
तपनस्तप्यते नूनं दहनोऽपि च दह्यते॥
कम्पन्ते सर्वतेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः।
यावत्स्वलोमसंख्यास्ति तावत्कोट्ययुतानि च॥
भर्त्रा स्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणा पतिव्रता।
धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः॥
धन्यः स च पतिः श्रीमान् येषां गेहे पतिव्रता।
पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः॥
पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते।
पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद् भुवम्॥
सा तीर्थभूमिर्मान्येति नात्र भारोऽस्ति पावनः।
बिभ्यत् पतिव्रतास्पर्शं कुरुते भानुमानपि॥
सोमो गन्धर्व एवापि स्वपावित्र्याय नान्यथा।
आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा॥

गायत्र्याघविनाशो नः पातिव्रत्येन साधनुत्।
गृहे गृहे न किं नार्यो रूपलावण्यगर्विताः॥
परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता।
भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च॥
भार्या धर्मफलायैव भार्या संतानवृद्धये।
परलोकस्त्वयं लोको जीर्यते भार्यया द्वयम्॥
देवपित्रतिथीनां च तृप्तिः स्याद् भार्यया गृहे।
गृहस्थः स तु विज्ञेयो गृहे यस्य पतिव्रता॥
यथा गंगावगाहेन शरीरं पावनं भवेत्।
तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सदनं पावनं भवेत्॥

[स्कन्दपु०, ब्रह्मखण्ड (धर्मारण्यखण्ड), अ० ७]

'जो नारी अपने मृत पतिका अनुसरण करती हुई घरसे श्मशानकी ओर प्रसन्नताके साथ जाती है, वह पद-पदपर अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जैसे सर्प पकड़नेवाला सँपेरा साँपको उसके बिलसे बलपूर्वक निकाल लेता है, उसी प्रकार सती स्त्री अपने पतिको यमदूतोंके हाथसे छीनकर स्वर्गलोकमें जाती है। उस पतिव्रता देवीको देखकर यमदूत स्वयं भाग जाते हैं। पतिव्रताके तेजका अवलोकन करके सबको तपानेवाले सूर्यदेव स्वयं सन्तप्त हो उठते हैं, दूसरोंको जलानेवाले अग्निदेव भी स्वयं ही जलने लगते हैं तथा त्रिभुवनके सम्पूर्ण तेज काँप उठते हैं। अपने शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने अयुतकोटि (उतने ही खर्व) वर्षोंतक पतिव्रता स्त्री स्वर्गमें पतिके साथ विहार करती हुई सुख भोगती है। संसारमें वह माता धन्य है, वह पिता धन्य है तथा वह भाग्यवान् पति धन्य है, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री विराजती है। पतिव्रता स्त्रीके पुण्यसे उसके पिता, माता और पति—इन तीनोंके कुलोंकी तीन-तीन पीढ़ियाँ स्वर्गलोकमें जाकर सुख भोगती हैं। पतिव्रताका चरण जहाँ-जहाँ धरतीका स्पर्श करता है,

वह स्थान तीर्थभूमिकी भाँति मान्य है। वहाँ भूमिपर कोई भार नहीं रहता, वह स्थान परम पावन हो जाता है। सूर्य भी डरते-डरते ही अपनी किरणोंसे पतिव्रताका स्पर्श करते हैं। चन्द्रमा और गन्धर्व आदि अपनेको पवित्र करनेके लिये ही उसका स्पर्श करते हैं और किसी भावसे नहीं। जल सदा पतिव्रता देवीके चरण-स्पर्शकी अभिलाषा रखता है। वह जानता है कि 'गायत्रीके द्वारा जो हमारे पापका नाश होता है, उसमें उस देवीका पातिव्रत्य ही कारण है। पातिव्रत्यके बलसे ही वह हमारे पापोंका नाश करती है। क्या घर-घरमें अपने रूप और लावण्यपर गर्व करनेवाली नारियाँ नहीं हैं। परन्तु पतिव्रता स्त्री भगवान् विश्वेश्वरकी भक्तिसे ही प्राप्त होती है। गृहस्थ-आश्रमका मूल भार्या है, सुखका मूल कारण भार्या है। धर्म-फलकी प्राप्ति तथा सन्तानकी वृद्धिका भी भार्या ही कारण है। भार्यासे लोक और परलोक दोनोंपर विजय प्राप्त होती है। घरमें भार्याके होनेसे ही देवताओं, पितरों और अतिथियोंकी तृप्ति होती है। वास्तवमें गृहस्थ उसीको समझना चाहिये जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है। जैसे गंगामें स्नान करनेसे शरीर पवित्र होता है, उसी प्रकार पतिव्रताका दर्शन करके सम्पूर्ण गृह पवित्र हो जाता है।'

(२)

पुरुषाणां सहस्रं च सती स्त्री च समुद्धरेत्।
पतिः पतिव्रतानां च मुच्यते सर्वपातकात्॥
नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा।
तया सार्धं च निष्कर्मा मोदते हरिमन्दिरे॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि।
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीषु तत्॥
तपस्विनां तपः सर्वं व्रतिनां यत् फलं व्रते।
दाने फलं च दातॄणां तत् सर्वं तासु सन्ततम्॥

स्वयं नारायणः शम्भुर्विधाता जगतामपि।
सुराः सर्वे च मुनयो भीतास्ताभ्यश्च सन्ततम्॥
सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा।
पतिव्रतां नमस्कृत्य मुच्यते पातकान्नरः॥
त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं क्षणेनैव पतिव्रता।
स्वतेजसा समर्था सा महापुण्यवती सदा॥
सतीनां च पतिः साध्वी पुत्रो निःशङ्क एव च।
न हि तस्य भयं किञ्चिद् देवेभ्यश्च यमादपि॥
शतजन्मसुपुण्यानां गेहे जाता पतिव्रता।
पतिव्रताप्रसूः पूता जीवन्मुक्तः पिता तथा॥

श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननं
न रत्नं स्त्रीभ्योऽन्यत् क्वचिदपि कृतं लोकपतिना।
तदर्थं धर्मार्थौ सुतविषयसौख्यानि च ततो
गृहे लक्ष्म्यो मान्याः सततमबला मानविभवैः॥
ये ह्यंगनानां प्रवदन्ति दोषान्
वैराग्यमार्गेण गुणान् विहाय।
ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः
सद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम्॥

(वाराहमिहिरकृत बृहत्संहिता)

'सती स्त्री सहस्रों पुरुषोंका उद्धार कर देती है। पतिव्रताका पति सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। सतियोंके व्रतके प्रभावसे उनके पतिको कर्मका भोग नहीं भोगना पड़ता। वह सब कर्मोंके बन्धनसे रहित हो सती पत्नीके साथ भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है। पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सब सती-साध्वी स्त्रीके चरणोंमें लोटते हैं। सम्पूर्ण देवताओं और मुनियोंका जो तेज है, वह सब सती नारियोंमें स्वभावतः रहता है। तपस्वी जनोंका सारा तप, व्रत करनेवालोंके

व्रतका सम्पूर्ण फल तथा दाताओंके दानका भी समस्त फल मिलकर जितना होता है, वह सब पतिव्रता देवियोंमें व्याप्त रहता है। साक्षात् भगवान् नारायण, भगवान् शिव, जगद्विधाता ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण देवता और महर्षि भी पतिव्रताओंसे सदा डरते रहते हैं। सतीकी चरणधूलि पड़नेसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। पतिव्रताको मस्तक झुकानेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। महापुण्यवती पतिव्रता स्त्री सदा अपने तेजसे तीनों लोकोंको क्षणभरमें भस्म कर डालनेकी शक्ति रखती है। पतिव्रताका पति तथा उसका पुत्र—ये दोनों सदा निर्भय रहते हैं। उन्हें देवताओं और यमसे भी किंचित् भय नहीं होता। जो सौ जन्मोंसे उत्तम पुण्यका संचय करते आ रहे हैं, उन्हींके घरमें पतिव्रता कन्या जन्म लेती है। पतिव्रताको जन्म देनेवाली माता परम पवित्र है तथा उसके पिता भी जीवन्मुक्त हैं। समस्त लोकोंकी रचना करनेवाले विधाताने कहीं भी स्त्रियोंके सिवा दूसरा कोई ऐसा रत्न नहीं उत्पन्न किया है, जो देखने, सुनने तथा स्पर्श और स्मरण करनेपर भी मनुष्योंको आनन्द प्रदान करनेवाला हो। उन्हींके लिये धर्म और अर्थका संग्रह होता है। पुत्रविषयक सुख उन्हींसे प्राप्त होता है। अतः मान ही जिनका धन है, ऐसे श्रेष्ठ पुरुषोंको उचित है कि वे घरमें अबलाओंको गृह-लक्ष्मी समझकर सदा उनका आदर करें। जो लोग केवल वैराग्यमार्गका सहारा ले स्त्रियोंके गुणोंको छोड़कर सिर्फ उनके दोषोंका वर्णन करते हैं, वे दुर्जन हैं—ऐसा मेरे मनका अनुमान है। वे दोष-वाक्य उनके मुखसे सद्भावनासे प्रेरित होकर नहीं निकले हैं।'

२ सोलह माताएँ

स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया।
अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका॥
सगर्भजा या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः।
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा॥
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च।
जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणेश० १५)

'स्तनपिलानेवाली, गर्भधारण करनेवाली, भोजन देनेवाली, गुरुपत्नी, इष्टदेवताकी पत्नी, पिताकी पत्नी (विमाता), पितृकन्या (सौतेली बहिन), सहोदरा बहिन, पुत्रवधू, सासु, नानी, दादी, भाईकी पत्नी, मौसी, बुआ और मामी—वेदमें मनुष्योंके लिये ये सोलह प्रकारकी माताएँ बतलायी गयी हैं।'

३ पतिव्रताका आदर्श
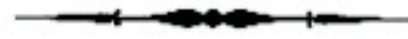
शंकर-उमा-संवाद

एक बार श्रीमहादेवजीने भगवती उमासे श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियोंके धर्म वर्णन करनेको कहा। उस समय गंगाजी आदि पवित्र नदीरूपिणी देवियाँ भी उपस्थित थीं, तब उमाने कहा—'मैं जिस स्त्रीधर्मको जानती हूँ, सो सुनाती हूँ। आप सावधान होकर सुनिये—

विवाहमें कन्याओंके घरवाले उसे स्त्रीधर्मका उपदेश पहलेसे ही देते हैं और स्त्री अग्निकी साक्षी देकर पतिकी सहधर्मचारिणी बन जाती है। स्त्रीको सुन्दर स्वभाववाली, विनययुक्त, मधुर, हितकर वचन बोलनेवाली, सुन्दर दर्शनवाली, पतिमें अनन्य चित्तवाली, प्रसन्नमुखी और पतिके साथ उसके धर्मका आचरण करनेवाली होनी चाहिये। जो साध्वी स्त्री अपने पतिको सदा देवताके समान देखती है वह धर्मपरायण होती है और उसे धर्मका भाग मिलता है, जो स्त्री देवताके समान अपने स्वामीकी सेवा-शुश्रूषा करती है, पतिके सिवा और किसीपर पतिभाव नहीं रखती, हर हालतमें प्रसन्न, सुन्दर आचरणयुक्त होती है, जिसके देखनेसे पतिको सुख मिलता है, जो सदा स्वामीके मुखको ही देखा करती है और नियमित भोजन करती है, वह धर्मचारिणी होती है। जो स्त्री 'पुरुष और स्त्री दोनोंको एक साथ रहकर उत्तम धर्मका पालन करना चाहिये'— इस दम्पति-धर्मको सुनकर उस धर्ममें लगी रहती है, उस स्त्रीको पतिके समान व्रतवाली समझना चाहिये। पतिको सदा ईश्वरके समान देखनेवाली स्त्रीको सहधर्मिणी समझना चाहिये। जो स्त्री अपने स्वामीकी देवताके समान सेवा करती है, वह बिना ही वशीकरणके अपने पतिको वशमें कर लेती है। ऐसी प्रसन्न मनवाली,

सुन्दर पतिव्रतवाली, सुखदर्शना, पतिमें अनन्य चित्तवाली, हँसमुखी स्त्रीको धर्मचारिणी समझना चाहिये। पतिके कठोर वचन कहने या कड़ी दृष्टिसे देखनेपर भी जो स्त्री खूब प्रसन्नमुखी रहती है, वही पतिव्रता है। जो स्त्री अपने पतिके सिवा पुँल्लिंगवाचक चन्द्रमा, सूर्य और वृक्षको भी नहीं देखना चाहती, उसी सुन्दरी स्त्रीको धर्मचारिणी समझना चाहिये। जो स्त्री अपने धनहीन, रोगी, दीन, रास्तेमें थके हुए स्वामीकी पुत्रके समान स्नेहके साथ सेवा करती है, वही धर्मचारिणी है। जो स्त्री संयमसे रहती है, चतुर है, पतिसे ही पुत्रोत्पन्न करती है, पतिको प्यारी है और अपने पतिको प्राणोंके समान समझती है, वही स्त्री धर्मचारिणी है।

जो स्त्री पतिकी सेवा प्रसन्न मनसे करती है, बेगार या भार नहीं समझती, पतिपर विश्वास रखती है और सदा विनयपूर्ण बर्ताव करती है, उसे धर्मचारिणी समझना चाहिये। जिस स्त्रीको पतिके लिये जैसी चाह होती है वैसी चाह किसी भी विषय, भोग, ऐश्वर्य और सुखके लिये नहीं होती, वह स्त्री धर्मचारिणी है। जो स्त्री प्रातःकाल उठनेमें प्रीति रखती है, घरके काममें दत्तचित्त होती है, घरको सदा साफ और गृहस्थीको व्यवस्थित रखती है, पतिके साथ सदा यज्ञ करती, पुष्पादिसे देवताकी पूजा करती है, पतिके साथ देवता, अतिथि, नौकर और अवश्य पालनीय सास-ससुर आदिको भोजनादिसे भलीभाँति तृप्त करके शेष बचे हुए अन्नका भोजन करती है, वह धर्मचारिणी है। जो गुणवती स्त्री अपने सास-ससुरके चरणोंकी सदा सेवा करती है, नैहरमें माता-पिताको सुख पहुँचाती है, वह तपोधना कही जाती है, जो ब्राह्मण, दुर्बल, दीन, अनाथ, अन्ध और अपाहिजोंको अन्नादि देकर उनका भरण-पोषण करती है, वह स्त्री पतिव्रत-धर्मवाली है। जो स्त्री कठिन नियमोंका पालन करती है, चित्तको वशमें रखती है, ऐश-आराममें नहीं फँसती,

पतिपरायण रहती है, वह सती पतिव्रता है। स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है, पति ही मित्र है, पति ही गति है, पतिके समान स्त्रियोंकी कोई गति नहीं है। पतिकी प्रसन्नताके बिना स्त्रीको स्वर्गकी भी इच्छा नहीं करनी चाहिये। पति दरिद्र हो, व्याधिग्रस्त हो, शापसे पीड़ित हो, चाहे जैसी भी दशामें हो, तब भी वह जो कुछ भी करनेको कहे, स्त्रीको निःसंकोच होकर वह कार्य करना चाहिये।'

(महाभारत, अनुशासनपर्वसे)

४ लक्ष्मी-रुक्मिणी-संवाद

एक दिन रुक्मिणीदेवी श्रीलक्ष्मीजीसे मिलने वैकुण्ठमें गयीं। परस्पर अनेक विषयोंमें चर्चा होने लगी। बातों-ही-बातोंमें रुक्मिणीजीने पूछा—'देवि! तुम किन स्त्रियोंके पास सदा रहती हो, तुम्हें कैसी स्त्रियाँ प्यारी हैं; किन उपायोंसे स्त्रियाँ तुम्हारी प्रीतिभाजन बन सकती हैं?' लक्ष्मीजी हँसकर कहने लगीं—

जिस स्त्रीकी अपने स्वामीमें अचल भक्ति है, वह मुझको सबसे ज्यादा प्यारी है, मैं उसे पलभर भी अपनेसे अलग नहीं कर सकती। ऐसी स्त्रियोंके पास रहनेसे मुझे हर्ष होता है। मैं उनके सत्संगकी इच्छा करती हूँ और सदा उनके साथ रहती हूँ और सब गुण होनेपर भी जिस स्त्रीकी अपने पतिमें श्रद्धा नहीं है, उसे मैं धिक्कारती हूँ और अपने पास नहीं आने देती।

'जो स्त्री क्षमाशील है यानी अपराध करनेवालोंको भी क्षमा कर देती है, उसके घरमें मैं रहती हूँ।'

सदा सच बोलनेवाली स्त्री मुझे विशेष प्यारी है, सरल स्वभावकी स्त्री ही मुझे पा सकती है। जो स्त्री छल-कपट-चालाकीसे दूसरोंको ठगती है, जो झूठ बोलती है, उसे मैं धिक्कारती हूँ और कभी दर्शन भी नहीं देती। जो स्त्रियाँ पवित्र रहती हैं, शुद्ध आचरणवाली हैं, देवता और विद्वान् ब्राह्मणोंमें भक्ति रखती हैं, पतिव्रतधर्मका पालन करती हैं, अतिथि-सेवाके लिये सदा तैयार रहती हैं, वे मुझको जल्दी पाती हैं।

जो स्त्रियाँ इन्द्रियोंको जीत चुकी हैं, अपने पतिको छोड़कर दूसरे पुरुषका मुँह देखना भी जिन्हें नहीं सुहाता, उनके घरसे मैं कभी नहीं निकलती, ऐसी स्त्रियाँ मुझे अपने वशमें कर लेती हैं।

इसके बाद लक्ष्मीजीने कहा—'बहिन रुक्मिणी! अब मैं उन

स्त्रियोंको बतलाती हूँ, जिनसे मैं अप्रसन्न रहती हूँ और जिनको धिक्कारती हूँ।'

जो स्त्रियाँ सदा अपने पतिके विरुद्ध काम करती हैं, पतिको तरह-तरहसे सताती हैं, उसे कड़वे वचन सुनाती हैं, ऐसी स्त्रियोंपर मैं बहुत नाराज रहती हूँ, मैं कभी उनका मुँह भी नहीं देखती।

जो स्त्रियाँ अपने पतिका घर छोड़कर दूसरेके घरमें रहनेको आतुर हैं, दूसरे पुरुषपर प्रेम रखती हैं, ऐसी स्त्रियाँ नरकके कीड़े बनती हैं। मैं सपनेमें भी ऐसी स्त्रियोंके पास नहीं जाती।

जो स्त्रियाँ बेशरम हैं, झगड़ालू, लड़ाईखोर हैं, कड़वी बोलती हैं, बहुत बोलती हैं, चाहे जिसके साथ बातचीत करती हैं, चाहे जिससे लड़ बैठती हैं, क्रोधी स्वभावकी हैं, बात-बातमें चिढ़ती हैं, जिनमें स्नेह और दया नहीं है, ऐसी स्त्रियोंको मैं त्याग देती हूँ।

जो अपवित्रतासे रहती हैं, बहुत सोती हैं, आलस्यके वश रहती हैं; बड़ोंका कहा नहीं मानतीं, काम करते समय परिणामका विचार नहीं करतीं, घरमें अच्छी तरह व्यवस्था नहीं रखतीं, घरकी चीजोंको चाहे जहाँ फेंक देती हैं, ऐसी स्त्रियाँ मुझे कभी अपनी नहीं बना सकतीं।

५ नारी और नरका परस्पर सम्बन्ध

पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे ही जगत् बना है और जबतक जगत् रहेगा, तबतक पुरुष और प्रकृतिका यह संयोग भी बना रहेगा। पुरुष और प्रकृति दोनों अनादि हैं। पुरुष-संसर्गसे प्रकृति ही सम्पूर्ण जीव-जगत्को, समस्त विकारोंको और निखिल गुणोंको उत्पन्न करती है (गीता १३। १९; १४। ३-४)। प्रकृति शक्ति है और पुरुष शक्तिमान्। शक्तिके बिना शक्तिमान्का अस्तित्व नहीं और शक्तिमान्के बिना शक्तिके लिये कोई स्थान नहीं। इनका परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है। इसी प्रकार नर-नारीका सम्बन्ध है। नर पुरुषका और नारी प्रकृतिका प्रतीक है। नारीका नाम ही 'प्रकृति' है। एकके बिना दूसरा अधूरा है। इसी तत्त्वपर हिन्दू-शास्त्रोंने नर और नारीके कर्तव्य-कर्मोंका निर्देश किया है। दोनोंके कर्तव्य पृथक्-पृथक् होनेपर भी वे एक ही शरीरके दाहिने और बायें अंगोंके कार्योंकी भाँति एक ही शरीरके पूरक हैं और एक ही शरीरकी स्थिति, समृद्धि, पुष्टि और तुष्टिके कारण हैं। एकके बिना दूसरेका काम नहीं चल सकता। अपने-अपने क्षेत्रमें दोनोंकी ही प्रधानता और श्रेष्ठता है, पर दोनोंकी श्रेष्ठता एक ही परम 'श्रेष्ठ' की पूर्तिमें संलग्न है। दोनों मिलकर अपने-अपने पृथक् कर्तव्योंका पालन करते हुए ही जीवनके परम और चरम लक्ष्य भगवान्को प्राप्त कर सकते हैं। नर भगवान्की प्राप्ति करता है—पतिव्रता नारीके दिव्य त्यागमय आदर्शको सामने रखकर भगवान्के प्रति सम्पूर्णतया आत्मसमर्पण करके; और नारी उसी भगवान्की सहज ही प्राप्ति करती है—अपने अभिन्नस्वरूप स्वामीका सर्वांगपूर्ण अनुगमन करके—उसके जीवित रहते और प्राण त्याग करके चले जानेपर भी। यह सीधा-सादा नर और नारीका स्वरूप तथा कर्तव्य है। नारी अपने क्षेत्रमें रहकर अपने

ही दृष्टिकोणसे नरकी सेवा करती है भगवत्प्राप्तिके लिये और नर भी अपने क्षेत्रमें रहकर नारीकी सेवा स्वीकार करके अपने क्षेत्रके अनुकूल कार्योंद्वारा उसकी सेवा करता है भगवत्प्राप्तिके लिये ही। दोनोंके ही स्थान और कर्तव्य एक-दूसरेके लिये महत्त्वपूर्ण, आदरणीय और अनिवार्य अभिनन्दनीय हैं तथा दोनों ही अपने-अपने लिये परम आदर्श हैं।

यही भारतीय नर-नारीका स्वरूप है। नर नारीका सेवक, सखा और स्वामी है। इसी प्रकार नारी भी नरकी सेविका, सखी और स्वामिनी है। इसीलिये नारी पतिव्रता है। यह पातिव्रत्य है—वस्तुतः परम पति परमात्माकी प्राप्ति और प्रीतिके उद्देश्यसे ही। इसीलिये प्राचीन और अर्वाचीन कुछ ब्रह्मवादिनी और भक्तिमती (गार्गी आदि और मीरा) आदि नारियाँ सबसे सम्बन्ध तोड़कर और एकमात्र भगवान्‌से ही सम्बन्ध जोड़कर भगवान्‌को प्राप्त कर चुकी हैं। आज भी ऐसी पवित्रहृदया नारियाँ हैं और आगे भी होंगी। पर जगच्चक्रके भलीभाँति संचालनके लिये नारीके इस आदर्शकी अपेक्षा उसके 'पातिव्रत्य' का आदर्श विशेष उपयोगी और आवश्यक है। इसीलिये शास्त्रोंमें स्त्री-धर्मके नामसे 'पातिव्रत्य' का ही निर्देश है। इस पातिव्रत्यके द्वारा नारी नरको पूर्ण बनाती है और मातृरूपसे जगत्‌को परम पवित्र चरित्रवान् पुरुषरत्न प्रदानकर भगवान्‌के मंगल उद्देश्यकी पूर्ति करती है।
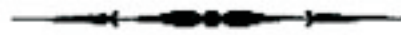
६ भारतीय नारीका स्वरूप और उसका दायित्व

वर्तमान युगमें सब ओर स्वतन्त्रताकी आकांक्षा जाग्रत् हो गयी है। नारीके हृदयमें भी इसका होना स्वाभाविक है। इसमें सन्देह नहीं कि स्वतन्त्रता परम श्रेष्ठ धर्म है और नर तथा नारी दोनोंको ही स्वतन्त्र होना भी चाहिये। यह भी परम सत्य है कि दोनों जबतक स्वतन्त्र नहीं होंगे, तबतक यथार्थ प्रेम होगा भी नहीं, परन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि दोनोंकी स्वतन्त्रताके क्षेत्र तथा मार्ग दो हैं या एक ही? सच्ची बात यह है कि नर और नारीका शारीरिक और मानसिक संघटन नैसर्गिक दृष्टिसे कदापि एक-सा नहीं है। अतएव दोनोंकी स्वतन्त्रताके क्षेत्र और मार्ग भी निश्चय ही दो हैं। दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें अपने-अपने मार्गसे चलकर ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। यही स्वधर्म है। जबतक स्वधर्मको नहीं समझा जायगा तबतक कल्याणकी आशा नहीं है। स्त्री घरकी रानी है, सम्राज्ञी है, घरमें उसका एकच्छत्र राज्य है, पर वह घरकी रानी है स्नेहमयी माता और आदर्श गृहिणीके ही रूपमें। यही उसका नैसर्गिक स्वातन्त्र्य है। इसीसे कहा गया है कि दस शिक्षकोंसे श्रेष्ठ आचार्य है, सौ आचार्योंसे श्रेष्ठ पिता है और हजार पिताओंकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठा, वन्दनीया और आदरणीया माता है।

नारीका यह सनातन मातृत्व ही उसका स्वरूप है। वह मानवताकी नित्यमाता है। भगवान् राम-कृष्ण, भीष्म-युधिष्ठिर, कर्ण, अर्जुन, बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानुज, गाँधी, मालवीय आदि जगत्के सभी बड़े-बड़े पुरुषोंको नारीने ही सृजन किया और बनाया है। उसका जीवन क्षणिक वैषयिक आनन्दके लिये नहीं; वह तो जगत्को प्रतिक्षण आनन्द प्रदान करनेवाली स्नेहमयी जननी है। उसमें प्रधानता है प्राणोंकी—हृदयकी और पुरुषमें प्रधानता है शरीरकी। इसीलिये पुरुषकी स्वतन्त्रताका

क्षेत्र है शरीर और नारीकी स्वतन्त्रताका क्षेत्र है प्राण—हृदय! नारी शरीरसे चाहे दुर्बल हो, परन्तु प्राणसे वह पुरुषकी अपेक्षा सदा ही अत्यन्त सबल है। इसीलिये पुरुष उतने त्यागकी कल्पना नहीं कर सकता, जितना त्याग नारी सहज ही कर सकती है। अतएव पुरुष और स्त्री सभी क्षेत्रोंमें समान भावसे स्वतन्त्र नहीं हैं।

कोई जोशमें आकर चाहे यह न स्वीकार करे, परन्तु होशमें आनेपर तो यह मानना ही पड़ेगा कि नारी देहके क्षेत्रमें कभी पूर्णतया स्वाधीन नहीं हो सकती। प्रकृतिने उसके मन, प्राण और अवयवोंकी रचना ही ऐसी की है। वह स्वस्थ मानव-शिशुको जन्म देकर अपने हृदयके अमीरससे उसे पाल-पोसकर पूर्ण मानव बनाती है। इस नैसर्गिक दायित्वकी पूर्तिके लिये ही उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका स्वाभाविक सद्व्यय होता रहा है। जगत्के अन्यान्य क्षेत्रोंमें जो नारीका स्थान संकुचित या सीमित दीख पड़ता है, उसका कारण यही है कि नारी बहुक्षेत्रव्यापी कुशल पुरुषका उत्पादन और निर्माण करनेके लिये अपने एक विशिष्ट क्षेत्रमें रहकर ही प्रकारान्तरसे सारे जगत्की सेवा करती रहती है। यदि नारी अपनी इस विशिष्टताको भूल जाय तो जगत्का विनाश बहुत शीघ्र होने लगे। आज यही हो रहा है!!

स्त्रीको बाल, युवा और वृद्धावस्थामें जो स्वतन्त्र न रहनेके लिये कहा गया है, वह इसी दृष्टिसे कि उसके शरीरका नैसर्गिक संघटन ही ऐसा है कि उसे सदा एक सावधान पहरेदारकी जरूरत है। यह उसका पद-गौरव है न कि पारतन्त्र्य। जिन पाश्चात्य देशोंमें नारी-स्वातन्त्र्यका अत्यधिक विस्तार है, वहाँ भी स्त्रियाँ पुरुषोंकी भाँति निर्भीकरूपसे विचरण नहीं कर पातीं। नारीमें मातृत्व है, उसे गर्भ-धारण करना ही पड़ता है। प्रकृतिने पुरुषको इस दायित्वसे मुक्त रखा है और नारीपर इसका भार दिया है। अतएव उसकी शारीरिक स्वाधीनता सर्वत्र सुरक्षित नहीं है, परन्तु इस दैहिक परतन्त्रतामें भी वह हृदयसे स्वतन्त्र है; क्योंकि तपस्या, त्याग, धैर्य, सहिष्णुता, सेवा आदि

सद्गुण सत्-स्त्रीकी सेवामें सदा लगे ही रहे हैं। पुरुषमें इन गुणोंको लाना पड़ता है, सो भी पूरे नहीं आते। स्त्रीमें स्वभावसे ही इन गुणोंका विकास रहता है। इसीसे नारी देहसे परतन्त्र होते हुए भी प्राणसे स्वतन्त्र है। नारीकी यह सेवा महान् है और केवल नारी ही इसे कर सकती है एवं इसी महत्सेवाके लिये स्रष्टाने नारीका सृजन किया है।

नारी अपने इस प्राकृतिक उत्तरदायित्वसे बच नहीं सकती। जो बचना चाहती है, उसमें विकृतरूपसे इसका उदय होता है। विकृतरूपसे होनेवाले कार्यका परिणाम बड़ा भयानक होता है। यूरोपमें नारी-स्वातन्त्र्य है, पर वहाँकी स्त्रियाँ क्या इस प्राकृतिक दायित्वसे बचती हैं? क्या वासनाओंपर उनका नियन्त्रण है? वे चाहे विवाह न करें या सामाजिक विघटन होनेके कारण चाहे उनके विवाहयोग्य उम्रमें न होने पावें, परन्तु पुरुष-संसर्ग तो हुए बिना रहता नहीं। कुछ दिनों पूर्व, इंग्लैंडकी पार्लमिण्टकी साधारण सभामें एक प्रश्नके उत्तरमें मजदूरसदस्य श्रीयुत लेजने बतलाया था कि 'इंग्लैंडमें बीस वर्षकी आयुवाली कुमारियोंमें चालीस प्रतिशत विवाहके पहले ही गर्भवती पायी जाती हैं और विवाहित स्त्रियोंके प्रथम संतानमें चारमें एक अर्थात् पचीस प्रतिशत नाजायज (व्यभिचारजन्य) होती हैं।' आपने यह भी कहा कि 'देशका ऐसा नैतिक पतन कभी देखनेमें नहीं आया।' कहते हैं, अमेरिकाकी स्थिति इनसे भी कहीं अधिक भयानक है। क्या ऐसा स्त्री-स्वातन्त्र्य भारतीय स्त्री कभी सहन कर सकती है?

विदेशियोंका पारिवारिक जीवन प्रायः नष्ट हो गया है। सम्मिलित कुटुम्ब—जो दया, प्रेम, स्नेह, परोपकार, सेवा-संयम और शुद्ध अर्थवितरणकी एक महती संस्था है, जिसमें दादा-दादी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, भाई-भौजाई, देवर-जेठ, सास-पतोहू, मामा-मामी, बुआ-बहिन, मौसी-मौसे, भानजे-भानजी, भतीजे-भतीजी आदिका एक महान् सुशृंखल कुटुम्ब है और जिसके भरण-पोषण तथा पालनमें गृहस्थ अपनेको धन्य और कृतार्थ समझता है—का तो नामो-निशान

भी वहाँ नहीं मिलेगा। स्वतन्त्रता तथा समानाधिकारके युद्धने वहाँके सुन्दर घरको मिटा दिया है। इसीसे वहाँ जरा-जरा-सी बातमें कलह, अशान्ति, विवाह-विच्छेद या आत्महत्या हो जाती है। वहाँ स्त्री अब घरकी रानी नहीं है, घरमें उसका शासन नहीं चलता, गृहस्थ-जीवनका परम शोभनीय आदर्श उसकी कल्पनासे बाहरकी वस्तु हो गया है। घरको सुशोभित करनेवाली श्रेष्ठ गृहिणी, पतिके प्रत्येक कार्यमें हृदयसे सहयोग देनेवाली सहधर्मिणी और बच्चोंको हृदयका अमृतरस पिलाकर पालनेवाली माताका आदर्श वहाँ नष्ट हुआ जा रहा है। 'व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य' और 'स्वतन्त्र' प्रेमके मोहमें वहाँकी नारी आज इतनी अधिक पराधीन हो गयी है कि उसे दर-दर भटककर विभिन्न पुरुषोंकी ठोकरें खानी पड़ती हैं। जगह-जगह प्रेम बेचना पड़ता है, नौकरीके लिये नये-नये मालिकोंके दरवाजे खटखटाने पड़ते हैं और No vacancy की सूचना पढ़कर निराश लौटना पड़ता है। यह कैसी स्वतन्त्रता है और कैसा सुख है? और खेद तथा आश्चर्य है कि आज भारतीय महिलाएँ भी इसी स्वतन्त्रता और सुखकी ओर मोहवश अग्रसर हो रही हैं!!

लोग कहते हैं 'वहाँकी शिक्षिता स्त्रियोंमें बहुमुखी विकास हुआ है। इसमें इतना तो सत्य है कि वहाँ स्त्रियोंमें अक्षर-ज्ञानका पर्याप्त विस्तार है; परन्तु इतने ही मात्रसे कोई सुशिक्षित और विकसित हो जाय, ऐसा नहीं माना जा सकता। वास्तवमें शिक्षा वह है, जो मनुष्यमें उसके स्वधर्मानुकूल कर्तव्यको जाग्रत् करके उसे उस कर्तव्यका पूरा पालन करनेयोग्य बना दे! यूरोपकी स्त्री-शिक्षाने यह काम नहीं किया। स्त्रियोंको उनके नैसर्गिक धर्मके अनुकूल शिक्षा मिलती तो बड़ा लाभ होता। प्रकृतिके विरुद्ध शिक्षासे इसी प्रकार बड़ी हानि हुई है। इस युगमें स्त्रियोंको जो शिक्षा दी जाती है, क्या उससे सचमुच उनका स्वधर्मोचित विकास हुआ है? क्या इस शिक्षासे स्त्रियाँ अपने कार्यक्षेत्रमें कुशल बन सकी हैं? क्या अपने क्षेत्रमें जो उनकी नैसर्गिक स्वतन्त्रता थी, उसकी पूरी रक्षा हुई है? उसका अपहरण तो नहीं हो

गया है? सच पूछिये तो सैकड़ों वर्षोंसे चली आती हुई यूरोपकी शिक्षाने वहाँ कितनी महान् प्रतिभाशालिनी स्वधर्मपरायणा जगत्की नैसर्गिक रक्षा करनेवाली महिलाओंको उत्पन्न किया है? बल्कि यह प्रत्यक्ष है कि इस शिक्षासे वहाँकी नारियोंमें गृहिणीत्व तथा मातृत्वका ह्रास हुआ है। अमेरिकामें ७७ प्रतिशत स्त्रियाँ घरके कामोंमें असफल साबित हुई हैं। ६० प्रतिशत स्त्रियोंने विवाहोचित उम्र बीत जानेके कारण विवाहकी योग्यता खो दी है। विवाहकी उम्र वहाँ साधारणत: १६ से २० वर्षतककी ही मानी जाती है, इसके बाद ज्यों-ज्यों उम्र बड़ी होती है, त्यों-ही-त्यों विवाहकी योग्यता घटती जाती है। इसीका परिणाम है कि वहाँ स्वेच्छाचार, अनाचार, व्यभिचार और अत्याचार उत्तरोत्तर बढ़ गये हैं। अविवाहिता माताओंकी संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है। घरका सुख किसीको नहीं। बीमारी तथा बुढ़ापेमें कौन किसकी सेवा करे? वहाँकी शिक्षिता स्त्रियोंमें लगभग ५० प्रतिशतको कुमारी रहना पड़ता है और बिना ब्याहे ही उनको वैधव्यका-सा दु:ख भोगना पड़ता है। यही क्या बहुमुखी विकास है?

इसके सिवा वर्तमान शिक्षाका एक बड़ा दोष यह है कि स्त्रियोंमें नारीत्व और मातृत्वका नाश होकर उनमें पुरुषत्व बढ़ रहा है और उधर पुरुषोंमें स्त्रीत्वकी वृद्धि हो रही है। नारी नियमित व्यायाम करके और भाँति-भाँतिके अन्यान्य साधनोंके द्वारा 'मर्दाना' बनती जा रही है, तो पुरुष अंगलालित्य, भाव-भंगिमा केश-विन्यास और स्वर-माधुर्य आदिके द्वारा 'जनाना' बनने जा रहे हैं। स्त्रियोंमें मर्दानगी अवश्य आनी चाहिये। उनको रणचण्डी और दशप्रहरण-धारिणी दुर्गा बनना चाहिये; परन्तु बनना चाहिये पति-पुत्रका अहित करनेकी इच्छा रखनेवाले दुष्ट आततायीको दण्ड देनेके लिये ही। यह तभी होगा, जब उनमें पत्नीत्व और मातृत्वका अक्षुण्ण भाव स्थिर रहेगा। भारतवर्षमें तो नारीकी रणरंगिणी मुण्डमालिनी कराली कालीके रूपमें और सिंहवाहिनी महिषमर्दिनी दुर्गाके रूपमें पूजा की है; परन्तु वहाँ भी वह है माँ ही।

स्नेहमयी माता, प्रेममयी पत्नी यदि वीरांगना बनकर रणसज्जा-सुसज्जित होकर मैदानमें आवेगी तो वह आततायियोंके हाथसे अपनी तथा अपने पति-पुत्रकी रक्षा करके समाज और देशका अपरिमित मंगल एवं मुख उज्ज्वल करेगी; परन्तु इस हृदय-धनको खोकर, मनकी इस परम मूल्यवान् सम्पत्तिको गँवाकर केवल देहके क्षेत्रमें स्वतन्त्र होनेके लिये यदि नारी तलवार हाथमें लेगी तो निश्चय समझिये उस तलवारसे प्यारी सन्तानोंके ही सिर धड़से अलग होंगे, प्राण-प्रियतम पतियोंके ही हृदय बेधे जायँगे और सबके मुखोंपर कालिमा लगेगी!! स्त्रियोंको रणरंगिणी बननेके पहले इस बातको अच्छी तरह सोच रखना चाहिये। अत्याचारी, अनाचारीका दमन करनेके लिये हमारी माँ-बहिनें रणचण्डी बनें, परन्तु हमारी रक्षा और हमारे पालनके लिये उनके हृदयसे सदा अमीरस बहता रहे। वहाँ तलवार हाथमें रहे ही नहीं।

अतएव इस भ्रमको छोड़ देना चाहिये कि 'वर्तमान यूरोप-अमेरिकामें स्त्रियाँ स्वतन्त्र होनेके कारण सुखी हैं और उन्हें वर्तमान शिक्षासे सच्चा लाभ हुआ है।' फिर यदि मान भी लें कि किसी अंशमें लाभ हुआ भी हो तो वहाँका वातावरण, वहाँकी परिस्थिति, वहाँके रस्मोरिवाज, वहाँकी संस्कृति और वहाँका लक्ष्य दूसरा है तथा हमारा बिलकुल दूसरा। वहाँ केवल भौतिक उन्नति ही जीवनका लक्ष्य है; हमारा लक्ष्य है परमात्माकी प्राप्ति । परमात्माकी प्राप्तिमें सर्वोत्तम साधन है विलास-वासनाका त्याग और इन्द्रियसंयम। इसका खयाल रखकर ही हमें अपनी शिक्षा-पद्धति बनानी चाहिये। तभी हमारी नारियाँ आदर्श माता और आदर्श गृहिणी बनकर जगत्‌का मंगल कर सकेंगी।

कहा जा सकता है कि 'क्या स्त्रियाँ देशका, समाजका कोई काम करें ही नहीं?' ऐसी बात नहीं है, करें क्यों नहीं, करें पर करें अपने स्वधर्मको बचाकर। अपने स्वधर्मकी जितनी भी शिक्षा अशिक्षित बहिनोंको दी जा सके उतना अपने उपदेश और आचरणोंके द्वारा वे अवश्य दें। सच्ची बात तो यह है कि यदि पति, पुत्र, पुत्रियाँ सब ठीक

रहें, अपने-अपने कर्तव्य-पालनमें ईमानदारीसे संलग्न रहें तो फिर देशमें, समाजमें ऐसी बुराई ही कौन-सी रह जाय, जिसे सुधारनेके लिये माताओंको घरसे बाहर निकलकर कुछ करना पड़े? और पुरुषोंको सत्पुरुष बनानेका यह काम है माताओंका। माताएँ यदि अपने स्त्रीधर्ममें तत्पर रहें तो पुरुषोंमें उच्छृंखलता आवेगी ही नहीं। अतः भारतकी आदरणीय देवियोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे अपने स्वरूपको सँभालें। अपने महान् दायित्वकी ओर ध्यान दें और पुरुषोंको वास्तविक स्वधर्मपरायण पुरुष बनावें। पुरुषोंकी प्रतिमाका वैसा ही निर्माण होगा, जैसा सर्वशक्तिमयी माताएँ करना चाहेंगी। आज जो पुरुष बिगड़े हैं, इसका उत्तरदायित्व माताओंपर ही है। वे उन्हें बना सकती हैं। यदि माताएँ पुरुषोंकी परवा न कर सकें, अपने पति-पुत्रोंकी कल्याण-कामना न करके अपनी स्वतन्त्र व्यक्तिगत कल्याण-कामना करने लगेंगी, तो पुरुषोंका पतन अवश्यम्भावी है और जब पति-पुत्र बिगड़ गये तो गृहिणी और माता भी किसके बलपर अपने सुन्दर स्वरूपकी रक्षा कर सकेंगी। पुरुषोंको बचाकर अपनेको बचाना—पुरुषोंको पुरुष बनाकर अपने नारीत्वका अभ्युदय करना—इसीमें सच्चा कल्याणकारी नारी-उद्धार है। पुरुषको बेलगाम छोड़कर नारीका उसका प्रतिद्वन्द्वी होकर अपनी स्वतन्त्र उन्नति करने जाना तो पुरुषको निरंकुश, अत्याचारी, स्वेच्छाचारी बनाकर उसकी गुलामीको ही निमन्त्रण देना है और फलतः समाजमें दुःखका ऐसा दावानल धधकाना है, जिसमें पुरुष और स्त्री दोनोंके ही सुख जलकर खाक हो जायँगे!! भगवान्‌की कृपासे नारीमें सुबुद्धि जाग्रत् हो, जिसमें वह अपने उत्तरदायित्वको समझे और स्वधर्मपरायण होकर जगत्‌का परम मंगल करे।

७ विवाहका महान् उद्देश्य और विवाहकाल

मनुष्योंमें पशुकी भाँति यथेच्छाचार न हो, इन्द्रियलालसा और भोगभाव मर्यादित रहें, भावोंमें शुद्धि रहे, धीरे-धीरे संयमके द्वारा मनुष्य त्यागकी ओर बढ़े, सन्तानोत्पत्तिके द्वारा वंशकी रक्षा और पितृऋणका शोध हो, प्रेमको केन्द्रीभूत करके उसे पवित्र बनानेका अभ्यास बढ़े, स्वार्थका संकोच और परार्थ-त्यागकी वृद्धि जाग्रत् होकर वैसा ही परार्थ-त्यागमय जीवन बने—और अन्तमें भगवत्प्राप्ति हो जाय। इन्हीं सब उद्देश्योंको लेकर हिन्दू-विवाहका विधान है। विवाह धार्मिक संस्कार है, मोक्ष-प्राप्तिका एक सोपान है। इससे विलास-वासनाका सूत्रपात नहीं होता, बल्कि संयमपूर्ण जीवनका प्रारम्भ होता है। इसीसे विवाहमें अन्य विषयोंके विचारके साथ-साथ कालका भी विचार किया गया है। इसमें सर्वप्रधान एक बात है—वह यह कि कन्याका विवाह रजोदर्शनसे पूर्व हो जाना चाहिये। रजोदर्शन सब देशोंमें एक उम्रमें नहीं होता। प्रकृतिकी भिन्नताके कारण कहीं थोड़ी उम्रमें हो जाता है तो कहीं कुछ बड़ी अवस्था होनेपर होता है। अतएव उम्रका निर्णय अपने देश-कालकी स्थितिके अनुसार करना चाहिये, परंतु रजोदर्शनके पूर्व विवाह हो जाना आवश्यक है।

रजोदर्शन प्रकृतिका एक महान् संकेत है। इसके द्वारा स्त्री गर्भ-धारणके योग्य हो जाती है और इसी कारण ऋतुकालमें स्त्रियोंकी काम-वासना बलवती हुआ करती है और वह पुरुष-सम्बन्धकी इच्छा करती है। इसी स्वाभाविक वासनाको केन्द्रीभूत करनेके लिये रजस्वला होनेसे पूर्व विवाहका विधान किया गया है। स्वामीके आश्रयसे स्त्रीकी काम-वासना इधर-उधर फैलकर दूषित नहीं हो

पाती, पर विवाह न होनेकी हालतमें वही वासना अवसर पाकर व्यभिचारके रूपमें परिणत हो जाती है, जैसा कि आजकल यूरोपमें हो रहा है। वहाँ कुमारी माताओंकी संख्या जिस प्रकार बढ़ रही है, उसको देखते यह कहना पड़ता है कि वहाँ सतीत्व या तो है ही नहीं और यदि कुछ बचा है तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जायगा!

रजस्वला होनेपर स्त्रीको पुरुष-प्राप्तिकी जो इच्छा होती है, वह उसे बलात् पुरुष-दर्शन करवाती है। उस समय यदि पतिके द्वारा अन्तःकरण सुरक्षित नहीं होता तो उसके चित्तपर अनेकों पुरुषोंकी छाया पड़ती है, जिससे उसका आदर्श सतीत्व नष्ट हो जाता है। ऋतुमती स्त्रीके चित्तकी स्थिति ठीक फोटोके कैमरेकी-सी होती है। ऋतुस्नान करके वह जिस पुरुषको मनसे देखती है, उसकी मूर्ति चित्तपर आ जाती है। इसीलिये ऋतुकालसे पहले ही विवाह हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। आदर्श सती वही है, जो या तो पतिके सिवा किसीको पुरुषरूपमें देखती ही नहीं और यदि देखती है तो पिता, भ्राता या पुत्रके रूपमें; पर ऐसा देखनेवाली भी मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता मानी गयी है—

उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसें । भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥

यह तभी सम्भव है, जब ऋतुकालके पूर्व विवाह हो चुका हो और वह ऋतुकालमें पतिके संरक्षणमें रहे।

साधारणतया विवाहके समय कन्याकी उम्र तेरह और वरकी कम-से-कम अठारह वर्ष होनी चाहिये। विवाह करना आवश्यक है और वह भी बहुत बड़ी उम्र होनेके पहले ही कर लेना चाहिये।

८ ऋतुकालमें स्त्रीको कैसे रहना चाहिये ?

स्त्री-शरीरमें जो मलिनता होती है, वह प्रतिमास रज:स्रावके द्वारा निकल जाती है और वह पवित्र होकर गर्भधारणके योग्य बन जाती है। मनुमहाराज भी यही कहते हैं। हिन्दू-शास्त्रोंमें कहा गया है कि रजस्वला स्त्रीको तीन दिनोंतक किसीका स्पर्श नहीं करना चाहिये। उसे सबसे अलग, किसीकी नजर न पड़े ऐसे स्थानमें बैठना चाहिये। चौथे दिन स्नान करके पवित्र होनेके समयतक किसीको न अपना मुख दिखलाना चाहिये, न अपना शब्द सुनाना चाहिये—

स्त्री धर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत्।
स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत् स्नानान्न शुद्ध्यति॥

ऋतुकालके समय पुरुषोंको भूलकर भी रजस्वलाके समीप नहीं जाना चाहिये। मनुमहाराज कहते हैं—

नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने।
समानशयने चैव न शयीत तया सह॥

रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते॥

तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम्।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते॥

(मनु० ४।४०—४२)

'कामातुर होनेपर भी पुरुष रजोदर्शनके समय स्त्री-समागम न करे और स्त्रीके साथ एक शय्यापर न सोवे। जो पुरुष रजस्वला नारीके साथ समागम करता है उसकी बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और आयु नष्ट

होती है। और जो पुरुष रजस्वला स्त्रीसे बचा रहता है, उसकी बुद्धि, तेज, बल, नेत्र-ज्योति और आयु बढ़ती है।'

रजस्वला होनेके समय जितना इन्द्रिय-संयम, हलका भोजन तथा विलासिताका अभाव होगा उतनी ही स्त्रीशोणितकी शक्ति कम होगी, जिससे ऋतुस्नानके बाद गर्भाधान होनेपर कन्या न होकर पुत्र उत्पन्न होगा। रजस्वला स्त्रीको तीन दिनोंतक केवल एक बार भोजन करना, जमीनपर सोना, संयत रहना, घी-दूध-दहीका सेवन नहीं करना, पुष्पमाला या गहने नहीं पहनना, अग्निको स्पर्श न करना और चतुर्थ दिन सचैल स्नान करना चाहिये।

ऋतुकालमें स्त्रीका स्पर्श न करनेसे उसका अपमान होता है, ऐसा कभी नहीं मानना चाहिये। उसके अपने स्वास्थ्यके लिये तथा दूसरोंके स्वास्थ्य एवं प्राकृतिक जड वस्तुओंको अपने स्वरूपमें सुरक्षित रहने देनेके लिये भी उसका किसीको न देखना और न स्पर्श करना आवश्यक है। बहुधा यह देखा गया है कि घरमें पापड़ बनते हों और रजस्वला स्त्री उनको देख ले तो पापड़ लाल हो जाते हैं। कुछ लोग इस बातको बहम कहा करते हैं, परंतु यह वैज्ञानिक तथ्य है।

अमेरिकाके प्रो० शीक (Schiek) ने अनुसन्धान करके यह प्रमाणित किया है कि रजस्वला नारीके शरीरमें ऐसा कोई प्रबल विष होता है कि वह जिस बगीचेमें चली जाती है, उस बगीचेके फूल-पत्ते आदि सूख जाते हैं, फूलोंके वृक्ष मर जाते हैं, फल सड़ जाते हैं। यहाँतक कि वृक्षोंमें कीड़े आदि भी पड़ जाते हैं। कभी-कभी मर भी जाते हैं।*

---

* देखिये　American Journal of Clinical Medicine, May 1921, Medical Record for February 1919,(P.317) abstracts and article (Wien Klin Week, May 20, 1920).

ऋतुकालके समय पालन करनेके नियम

जबतक रक्त बहता है, तबतक ऋतुकाल ही है। साधारणतः तीन दिन ऋतुकालके माने जाते हैं, परंतु तीन दिनके बाद भी यदि रक्त बन्द नहीं होता तो वैसी हालतमें चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्धि नहीं होती। अशुद्धिका कारण तो रक्तस्राव है, वह जबतक है, तबतक स्नानमात्रसे शुद्धि कैसे हो सकती है? अतएव जबतक रक्तस्राव है, तबतक नियमोंका पालन भी आवश्यक है।

नियम

(१) ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये, जिससे तलपेटको अधिक हिलाना पड़े या उसपर जोर देनेका-सा दबाव पड़े। जलका भरा कलसा उठाना, ज्यादा देरतक उकड़ूँ बैठना, दौड़-भाग करना, बहुत जोरसे हँसना, रोना या झगड़ा करना, ज्यादा घूमना-फिरना, गाना-बजाना, शोक, दुःख या काम बढ़ानेवाले दृश्य देखना या ग्रन्थ पढ़ना—ये सभी हानिकर हैं। खास करके—जो काम अन्दरसे जोर लगाकर करने पड़ते हैं, (जैसे जलका कलसा उठाना या चूल्हेपरसे बहुत वजनदार बर्तनको उतारना आदि) नहीं करने चाहिये। घरके साधारण काम-काज करनेमें हर्ज नहीं है।

(२) तलपेट और कमरको ठण्ड लगे ऐसा काम नहीं करना चाहिये। रजोदर्शनके समय जो स्नान करना मना है, उसका यही कारण है। इस समय मस्तकमें गरमी मालूम होनेपर ठण्डा तेल लगाना और जलके अँगोछेसे पोंछना हानिकारक नहीं है; परंतु कमर जलमें डुबाकर नहाना या गीली जगहमें खुले बदन सोना बहुत हानिकर है।

(३) मैले-कुचैले कपड़ेके टुकड़ेका व्यवहार नहीं करना चाहिये। एक बार काममें लाया हुआ कपड़ा धो लेनेपर भी फिर उसे काममें लेना हानिकर है। रजस्वला-समयका रक्त एक प्रकारका विष है। इस विषके संसर्गमें आयी हुई चीजको भी विषके समान ही समझकर उसका त्याग करना चाहिये।

(४) जबतक रक्तस्राव होता हो, तबतक पतिका संग तो भूलकर भी न करे। शास्त्रोंमें इन दिनोंमें पतिका दर्शन करना भी निषिद्ध बतलाया गया है।

(५) मांसाहारियोंको भी इन दिनोंमें मांस, मद्य, मछली या प्याज आदि बिलकुल नहीं खाने चाहिये।

साधारण-से नियम हैं। पर इनका पालन करनेवाली स्त्री जैसे स्वस्थ और सुखी रहती है, वैसे ही न पालन करनेवालीको निश्चय ही बीमार तथा दुःखी होना पड़ता है।

९ गर्भाधानके श्रेष्ठ नियम

'गर्भाधान-संस्कार' सबसे आवश्यक संस्कार है; परंतु आजकल उसका सर्वथा विलोप ही हो गया है। स्त्री-पुरुषके शरीर और मनकी स्वस्थता, पवित्रता, आनन्द तथा शास्त्रानुकूल तिथि, वार, समय आदिके संयोगसे ही श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न होती है। जैसे फोटोमें हूबहू वही चित्र आता है, जैसा फोटो लेनेके समय रहता है, उसी प्रकार गर्भाधानके समय दम्पतिका जैसा तन-मन होता है; वैसे ही तन-मनवाली सन्तान होती है। मनुष्यका प्रधान लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। अतः उसी लक्ष्यको ध्यानमें रखकर उसीके लिये जगत्के सारे काम करने चाहिये। गर्भाधानका उद्देश्य, गर्भ-ग्रहणकी योग्यता, तदुपयोगी मन और स्वास्थ्य एवं तदुपयोगी काल—इन सब बातोंको सोच-समझकर विवाहित पति-पत्नीके संसर्ग करनेसे उत्तम सन्तान होती है। मनमाने रूपमें अथवा स्त्रीके ऋतुमती होते ही शास्त्रकी दुहाई देकर पशुवत् आचरण करनेसे तो हानि ही होती है।

जिनको सन्तान न होती हो, उन्हें पहले तो पति-पत्नी दोनोंके शरीरकी परीक्षा करवा लेनी चाहिये और गर्भाधानमें रुकावट डालनेवाला कोई रोग हो तो उसकी चिकित्सा करानी चाहिये। रोग न हो और पुत्रकी इच्छा प्रबल हो—(यद्यपि संसार-बन्धनसे मुक्तिके लिये पुत्रकी जरा भी आवश्यकता नहीं है। सन्तानके मोहसे तो बन्धन बढ़ता ही है) तो 'हरिवंशपुराण' का श्रद्धा-भक्तिके साथ मनोयोगपूर्वक श्रवण करना चाहिये। यथाशक्ति दक्षिणा देकर सात्त्विक प्रकृतिके वयोवृद्ध, सदाचारी तथा भगवद्विश्वासी पवित्र ब्राह्मणके द्वारा कथा सुननेपर भगवत्कृपासे सुपुत्रकी प्राप्ति होना कोई

बड़ी बात नहीं है। इसके लिये 'सन्तान-गोपाल' मन्त्रका जप भी किया जाता है। वह मन्त्र है—

देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥

इस मन्त्रका जप हो सके तो विश्वास तथा श्रद्धापूर्वक पति-पत्नी दोनोंको करना चाहिये। प्रातःकाल स्नान करके नित्यकर्म (पुरुष सन्ध्या-वन्दनादि तथा स्त्री नियमित दैनिक जप-पाठ आदि) करनेके बाद तुलसीकी मालासे उक्त मन्त्रका जप करना चाहिये। जपके समय सामने किसी धोयी हुई पवित्र चौकीपर या दीवालपर भगवान् श्रीकृष्णका सुन्दर चित्रपट (मढ़ाई हुई तस्वीर) रख लेना चाहिये और भगवद्भावसे उसकी पूजा करनी चाहिये। पूजामें चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ाकर जलसे आचमन कराना चाहिये। फिर मुखशुद्धिके लिये पान या इलायची चढ़ाकर कपूरसे आरती करनी चाहिये। फिर फूल चढ़ाकर प्रणाम करना चाहिये। पूजाकी सामग्री शुद्ध होनी चाहिये। यों पूजा-प्रणाम करनेके बाद भगवान्‌से कातरभावयुक्त प्रार्थना करनी चाहिये तथा यह विश्वास करना चाहिये कि भगवान्‌के कृपा-प्रसादसे हमें अवश्य सत्पुत्रकी प्राप्ति होगी—प्रार्थनाका यह भाव है—'दयामय श्रीभगवन्! हमें पुत्र देनेकी कृपा करें। वह पुत्र सुयोग्य, दीर्घजीवी, सुन्दर, सच्चरित्र, मेधावी, सुखी-जीवन और भगवद्भक्त हो।'

इस प्रार्थनाके पश्चात् तुलसीकी मालापर जप आरम्भ करना चाहिये। पत्नी न कर सके तो पति ही करे। प्रतिदिन ५५ मालाका जप अवश्य करें। इस प्रकार पूरा एक मास जप करनेपर मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद यथासाध्य प्रतिदिन विश्वासके साथ नियमित जप चालू रखना चाहिये। मन्त्र-सिद्धि होनेके बाद जब पत्नी ऋतुस्नाता हो, तब पुत्रकी प्राप्तिके लिये ही—काम-विकारके वश होकर नहीं, युग्म रात्रिमें गर्भाधान करना चाहिये।

यहाँ गर्भाधानके कालके सम्बन्धमें शास्त्रकी जो व्यवस्था है, उसे संक्षेपमें लिखा जाता है—

लग्न, सूर्य और चन्द्रके पापयुक्त और पापमध्यगत न होनेपर, सप्तम स्थानमें पापग्रह न रहनेपर और अष्टम स्थानमें मंगल एवं चतुर्थमें पापग्रह न रहनेपर तथा राशि, लग्न और लग्नके चतुर्थ, पंचम, सप्तम, नवम और दशम स्थान शुभग्रहयुक्त होनेपर एवं तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान पापयुक्त होनेपर 'गण्ड' समयका त्याग करके युग्म रात्रिमें पुरुषके चन्द्रादि शुद्ध होनेपर उसे गर्भाधान करना चाहिये।*

ऋतुके पहले दिनसे सोलहवें दिनतक ऋतुकाल माना गया है, इसमें पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रिको छोड़कर युग्म रात्रियोंमेंसे किसी रात्रिको गर्भाधान करना चाहिये। ज्येष्ठा, मूल, मघा, अश्लेषा, रेवती, कृत्तिका, अश्विनी, उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तराभाद्रपद नक्षत्र तथा पर्व, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी, एकादशी, व्यतिपात, संक्रान्ति, इष्टजयन्ती आदि पर्वोंका त्याग करके गर्भाधान करना चाहिये।

मनुमहाराजके कथनानुसार सोलह रात्रियाँ ऋतुकालकी हैं। इनमें

---

* पापसंयुतमध्यगेषु दिनकृल्लग्नक्षपास्वामिषु
तद्द्यूनेष्वशुभोज्झितेषु धिकुजे च्छिद्रे विपापे सुखे।
सद्युक्तेषु त्रिकोणकण्टकविधूष्वायत्रिषष्ठान्विते
पापे युग्मनिशास्वगण्डसमये पुंशुद्धितः संगमः॥

'अश्विनी, मघा और मूल नक्षत्रमें प्रथम तीन दण्ड और रेवती, अश्लेषा, ज्येष्ठा नक्षत्रमें शेष पाँच दण्ड 'गण्ड' माने जाते हैं। मूलके आदि तीन दण्ड और ज्येष्ठाके शेष पाँच दण्डका नाम 'दिवागण्ड' है। मघाके आदि तीन दण्ड और अश्लेषाके शेष पाँच दण्डका नाम 'रात्रिगण्ड' है तथा अश्विनीके आदि तीन दण्ड और रेवतीके शेष पाँच दण्डका नाम 'सन्ध्यागण्ड' है।'

रक्तस्रावकी पहली चार रात्रियाँ अत्यन्त निन्दित हैं। ये चार तथा ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि—इस प्रकार छः रात्रियोंमें संसर्ग निषिद्ध है। शेष दस रात्रियोंमें छठी, आठवीं और दसवीं आदि युग्म रात्रिमें गर्भाधान होनेपर पुत्र एवं पाँचवीं, सातवीं आदि अयुग्म रात्रियोंमें होनेपर कन्या होती है। ऋतुकालकी निन्दित छः रात्रि और अनिन्दित दस रात्रियोंमें कोई-सी भी आठ रात्रि—यों चौदह रात्रियोंको छोड़कर शेष पर्ववर्जित दो रात्रियोंमें स्त्री-संसर्ग करनेवालेके ब्रह्मचर्यकी हानि नहीं होती। वह गृहस्थाश्रममें रहते हुए ही ब्रह्मचारी है।

इसमें रजोदर्शनके निकटकी रात्रियोंमें उत्तर-उत्तर रात्रियाँ अधिक प्रशस्त हैं। सत्रहवीं रात्रिसे पुनः रजोदर्शनकी चौथी रात्रितक सर्वथा संयमसे रहना चाहिये। भोगकी संख्या जितनी ही कम होगी उतनी ही शुक्रकी नीरोगता, पवित्रता और शक्तिमत्ता बढ़ेगी। भोग-सुख भी उसीमें अधिक प्राप्त होगा और सन्तान भी स्वस्थ, पुष्ट, धर्मशील, मेधावी तथा संवर्धनशील होगी।

इसी प्रकार कालका भी बड़ा महत्त्व है। दिनमें गर्भाधान सर्वथा निषिद्ध है। दिनके गर्भाधानसे उत्पन्न सन्तान दुराचारी और अधम होती है। सन्ध्याकी राक्षसीवेलामें घोरदर्शन विकटाकार राक्षस तथा भूत-प्रेत-पिशाचादि विचरण करते रहते हैं। इसी समय भगवान् भवानीपति भी भूतोंसे घिरे हुए घूमते रहते हैं। दितिके गर्भसे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु-सरीखे महान् दानव इसीलिये उत्पन्न हुए थे कि उन्होंने आग्रहपूर्वक सन्ध्याकालमें अपने स्वामी महात्मा कश्यपजीके द्वारा गर्भाधान करवाया था। रात्रिके तृतीय प्रहरकी सन्तान हरिभक्त और धर्मपरायण हुआ करती है।

गर्भाधानके समय शुद्ध सात्त्विक विचार होने चाहिये। चरकसंहिता शरीर अष्टम-अध्यायमें बताया गया है कि 'गर्भाधानके समय रजवीर्यके मिश्रणकालमें माता-पिताके मनमें जैसे भाव होते हैं,

वे ही भाव पूर्वकर्मके फलका समन्वय करते हुए गर्भस्थ बालकमें प्रकट होते हैं।'

जैसी धार्मिक, शूर, विद्वान्, तेजस्वी सन्तान चाहिये, वैसा ही भाव रखना चाहिये और ऋतुस्नानके बाद प्रतिदिन वैसी ही वस्तुओंको देखना और चिन्तन करना चाहिये। महर्षि चरकने लिखा है कि 'जो स्त्री पुष्ट, बलवान् और पराक्रमी पुत्र चाहती हो उसे ऋतुस्नानके पश्चात् प्रतिदिन प्रात:काल सफेद रंगके बड़े भारी साँड़को देखना चाहिये।' 'हमारे शास्त्रोंमें कहा गया है और यह विज्ञानसिद्ध है कि ऋतुस्नानके पश्चात् स्त्री पहले-पहल जिसको देखती है, उसीका संस्कार उसके चित्तपर पड़ जाता है और वैसी ही सन्तान बनती है। एक अमेरिकन स्त्रीके कमरेमें एक हब्शीकी तस्वीर टँगी थी। उसने ऋतुस्नानके बाद पहले उसीको देखा था और गर्भकालमें भी प्रतिदिन उसीको देखा करती थी। उसका गर्भस्थ बालकपर इतना प्रभाव पड़ा कि उस बालकका चेहरा ठीक हब्शीका-सा हो गया। एक ब्राह्मण-स्त्रीने ऋतुस्नानके बाद एक दुष्ट प्रकृतिके पठानको अचानक देख लिया था, इससे उसका वह बालक ब्राह्मणोंके आचरणसे हीन पठान-प्रकृतिका हुआ। सुश्रुत-शारीरस्थानके द्वितीय अध्यायमें लिखा है कि ऋतुस्नान करनेके बाद स्त्रीको पति न मिलनेपर वह कभी-कभी कामवश स्वप्नमें पुरुष-समागम करती है। उस समय अपना ही वीर्य रजसे मिलकर जरायुमें पहुँच जाता है और वह गर्भवती हो जाती है। परंतु उस गर्भमें पति-वीर्यके अभावमें अस्थि आदि नहीं होते, वह केवल मांसपिण्डका कुम्हड़ा-जैसा होता है या साँप, बिच्छू, भेड़िया आदिके आकारके विकृत जीव ऐसे गर्भसे उत्पन्न होते हैं। ऋतुकालमें कुत्ते, भेड़िये, बकरे, आदिके मैथुन देखनेपर भी उसी भावके अनुसार रातको स्वप्न आते हैं और ऐसे विकृत जीव गर्भमें निर्माण हो जाते हैं।'

इसके अतिरिक्त गर्भवती स्त्रीको गर्भकालमें बहुत सावधानीके साथ सद्विचार, सत्संग, सत्-आलोचन, सद्ग्रन्थोंका अध्ययन और सत् तथा शुभ दृश्योंको देखना चाहिये। गर्भकालमें प्रह्लादकी माता कयाधू देवर्षि नारदजीके आश्रममें रहकर नित्य हरिचर्चा सुनती थीं, इससे उनके पुत्र प्रह्लाद महान् भक्त हुए। सुभद्राके गर्भमें ही अभिमन्युने अपने पिता अर्जुनके साथ माताकी बातचीतमें ही चक्रव्यूह-भेदन करनेकी कला सीख ली थी।
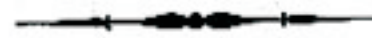
१० सर्वश्रेष्ठ सन्तान-प्राप्तिके लिये नियम

प्राणियोंकी हिंसा न करे, किसीको शाप न दे, झूठ न बोले, नख और रोम छेदन न करे, अपवित्र और अशुभ वस्तुका स्पर्श न करे, जलमें डुबकी लगाकर न नहावे, क्रोध न करे, दुष्टजनोंके साथ कभी बातचीत न करे, बिना धोया कपड़ा और निर्माल्य माला धारण न करे, जूठा, चींटियोंका खाया हुआ आमिषयुक्त, अपवित्र स्त्रीके द्वारा लाया हुआ और ऋतुमतीकी नजरमें पड़ा हुआ भोजन न करे, भोजन करके हाथ धोये बिना, केश बाँधे बिना, वाणीका संयम किये बिना, वस्त्रोंसे अंगोंको ढके बिना और सन्ध्याके समय घरसे बाहर विचरण न करे, पैर धोये बिना, गीले पैर रखकर एवं उत्तर या पश्चिमकी ओर सिर करके न सोये। नंगी होकर, किसी दूसरेके साथ तथा सन्ध्याकालमें भी न सोवे। प्रातःकाल भोजनसे पहले धोये हुए कपड़े पहनकर, पवित्र होकर तथा समस्त मंगलद्रव्योंको धारण करके प्रतिदिन गौ, ब्राह्मण, भगवान् नारायण और भगवती लक्ष्मीदेवीका पूजन अवश्य करे। माला, चन्दन, भोजनसामग्री आदिके द्वारा पतिका पूजन करे एवं पूजा समाप्त होनेपर पतिका अपने उदरमें ध्यान करे।

गर्भकालमें इस प्रकार करनेसे निश्चय ही तेजस्वी, मेधावी, शूर तथा धार्मिक पुत्रका जन्म होता है।

११ गर्भिणीके लिये आहार-विहार

जननीकी शारीरिक और मानसिक स्थिति—खास करके उसके गर्भावस्थाके आहार-विहार और मानसिक स्थितिके ऊपर ही होनेवाली सन्तानका स्वास्थ्य और स्वभाव अधिकांशमें निर्भर करता है। गर्भधारणके बाद स्त्रीको बहुत सावधानीसे आवश्यक नियमोंका पालन करना चाहिये। आजकल इस सम्बन्धमें स्त्रियाँ बहुत असावधान रहती हैं। इसीसे गर्भपातकी संख्या बढ़ रही है और साथ ही स्त्रियोंके रोगोंकी भी। माता जो कुछ खाती है, उसीका परिपाक होनेपर उसके सारसे जो रस बनता है उसका एक अंश स्तन-दुग्धके रूपमें परिणत होता है और दूसरा अंश रक्तके रूपमें परिणत होकर गर्भका पोषण करता है। माताके इस आहार-रसके द्वारा ही गर्भस्थ शिशु बढ़ता और पुष्ट होता है। अतएव माता यदि सुपथ्यका सेवन तथा गर्भिणीके नियमोंका पालन करती है तो सन्तान सहज ही हृष्ट-पुष्ट होती है और ठीक समयपर उसका प्रसव भी सुखपूर्वक होता है। ऐसा न करनेपर माताको कष्ट होनेके साथ ही सन्तान भी जीवनभर रोगोंसे घिरी रहती है।

आहार

गर्भिणीको रुचिकारक, स्निग्ध, हलका, अधिक हिस्सा मधुर और अग्निदीपक (सोंठ, पीपल, काली मिर्च, अजवायन आदि) द्रव्योंके संयोगसे बना हुआ भोजन करना चाहिये। चबानेमें कष्ट हो, ऐसी चीज नहीं खानी चाहिये। चरक-सुश्रुतमें गर्भिणीको मीठे पदार्थ खानेकी सम्मति दी गयी है। मीठे पदार्थोंमें दूध, घी, मक्खन, चावल, जौ, गेहूँ, मूँग आदि अन्न; खीरा, नारियल, पपीता, कसेरू, पके टमाटर आदि फल; किसमिस, खजूर आदि मेवा और लौकी,

कुम्हड़ा आदि साग समझने चाहिये। इनका पचनेयोग्य मात्रामें सेवन करना चाहिये।

गर्भिणीके लिये दूध सर्वोत्तम खाद्य है। पहले और दूसरे महीने सुबह-शाम अन्न और अन्य समय परिमित मात्रामें गुनगुना दूध लेना चाहिये। तीन-चार बारमें प्रतिदिन कम-से-कम एक सेर दूध पीना उचित है। तीसरे महीने शहद और घी मिलाकर और चौथे महीने दूध और मक्खनके साथ अन्न लेना चाहिये। पाँचवें महीने भी दूध-घीके साथ भोजन करना चाहिये। छठे और सातवें महीने गोखुरूके साथ घीको पकाकर उपयुक्त मात्रामें पीना चाहिये। चरकमें कहा गया है कि सातवें महीने पेटकी चमड़ी फट जाती है और शरीरपर खुजलाहट होती है। इस समय बेरके क्वाथ और शतावरी तथा विदारीकन्द आदिको मक्खनके साथ पकाकर उसकी दो तोला.......मात्रा गर्भिणीको पिलानी चाहिये और पेट तथा छातीपर चन्दनका लेप करना अथवा कवरी वृक्षके पत्तोंको तिलके तेलमें पकाकर वह तेल शरीरपर लगाना चाहिये। शरीर अधिक फट जाय और खुजली बहुत ज्यादा हो तो मालती-पुष्प और मुलहठीको जलमें पकाकर उस जलसे शरीर धोना चाहिये। आठवें महीने दूधमें पकाकर जौ (बारली) और साबूदाने आदि कुछ घी मिलाकर देना चाहिये। गर्भिणीकी मलशुद्धि हो और वायु सरल रहे, इसके लिये उसे दूधके साथ शतावरी देनी चाहिये तथा आवश्यक हो तो शतावरी, विदारीकन्द, गोखुरू आदिको तिलके तेलमें पकाकर उस तेलकी पिचकारी भी दी जा सकती है। गर्भिणीको उपवास नहीं करना चाहिये। चरक-सुश्रुतके इस मतसे ऐसा जान पड़ता है कि गर्भिणीके लिये दूध, हलका अन्न ही उत्तम भोजन है।

गर्भिणीका कोठा साफ रहे और पेशाब सरलतासे होता रहे, इस ओर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। पके पपीते, टमाटर, खीरे, सन्तरे और सेब तथा हरी सब्जी आदि खानेसे कब्ज मिटता है और

खून भी साफ होता है। दिन-रातमें कम-से-कम चार-पाँच बार पेशाब हो जाना चाहिये, नहीं तो समझना चाहिये, पेशाब कम होता है और वैसी हालतमें जल तथा दूधकी मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। कच्चे दूधके साथ समान मात्रामें जल मिलाकर सुबह-शाम एक-एक कटोरी पी लेनेसे पेशाब साफ होने लगता है।

गर्भिणीको गुरुपाक (भारी) भोजन, अधिक मसाले, लाल मिर्च और ज्यादा गरम चीजें नहीं खानी चाहिये। सड़ी-बासी और रूखी चीजें तो बिलकुल ही नहीं! भोजन खूब चबा-चबाकर करना चाहिये और सन्ध्याका भोजन सात बजेसे पहले ही कर लेना चाहिये। आजकल चाय खूब चल रही है। स्त्रियोंमें भी इसकी लत बढ़ रही है, पर गर्भावस्थामें चाय बहुत हानिकारक है। किसी भी तरह न रहा जाय तो चाय बहुत ही थोड़ी और दूध अधिक मिलाकर लेना चाहिये। पान भी न खाया जाय तो अच्छा है। पानके साथ सुरती या जर्दा तो खाना ही नहीं चाहिये। कोयला, ठीकरी, मिट्टी आदि चीजें बिलकुल नहीं खानी चाहिये। इन चीजोंके खानेसे प्रसवमें पीड़ा होती है, रतौंधी हो जाती है, गर्भको नुकसान पहुँचता है और बहुधा बच्चे दुर्बल, नेत्ररोगी और अन्धेतक पैदा होते हैं।

अनुभवी लोगोंके द्वारा कहा जाता है कि गर्भधारणके बाद पहलेसे दूसरे महीनेतक ५ से १० ग्रेनतक सोडा-बाईकार्ब (Soda-bicarb) दिनमें दो बार खानेसे गर्भस्थ सन्तान पुत्र होती है। जर्मनीमें इसका प्रयोग किया गया था।

विहार

सुश्रुतमें कहा गया है कि गर्भिणीको पहले दिनसे ही सदा प्रफुल्लितचित्त, पवित्र अलंकारों और साफ-सफेद वस्त्रोंसे भूषित, शान्ति और मंगल-कार्योंमें निरत तथा देवता और बड़ोंकी भक्ति करते रहना चाहिये। इस अवस्थामें बड़ी सावधानीसे चलना-फिरना चाहिये; क्योंकि अकस्मात् पैर फिसलकर गिर जानेसे गर्भपात हो

सकता है। सदा शुद्धाचारसे रहना चाहिये। गर्भिणीको भक्तों, महापुरुषों, सन्तों और शूरवीरोंके जीवन-चरित्र तथा श्रीहरि-कथा आदि सुननी चाहिये। इनसे बहुत लाभ है।

गर्भिणीको ज्यादा मोटा कपड़ा नहीं पहनना चाहिये। साड़ी तथा अंगका वस्त्र चुस्त न होकर कुछ ढीला रहे। कपड़ा, बिछौना तथा बैठनेका आसन साफ-सुथरा और कोमल हो। बिछौना बहुत ऊँचेपर न हो, बिछौनेपर नरम तकिया रहे, गर्भिणीको शरीर सह सके, जैसे ठण्डे या गरम जलसे नहाना चाहिये। शरीरको साफ रखना चाहिये, जिससे रोमावलियोंके छेद खुले रहें। आजकल पढ़ी-लिखी स्त्रियोंमें ऊँची एड़ीके जूतोंका प्रचार बढ़ रहा है। यह बड़ा हानिकारक है। इससे स्नायुओंपर दबाव पड़ता है, पैर खिंचने लगते हैं और चलते समय कुछ टेढ़े भी हो जाते हैं। ये कभी न पहनने चाहिये और गर्भावस्थामें तो बिलकुल नहीं । नरम सपाट देशी जूती या चप्पल अथवा बिना एड़ीकी स्लीपरका व्यवहार करना चाहिये।

गर्भिणीको भोजनके बाद कुछ देर आराम करना चाहिये, परंतु दिनमें सोना नहीं चाहिये। न दिनभर लगातार बैठे ही रहना चाहिये। थोड़ी मेहनतके घरके काम करते रहना चाहिये। प्रतिदिन हलकी चक्कीसे थोड़ा पीसना चाहिये। कुछ देर रोज शुद्ध वायुमें टहलना बहुत हितकर है, चाहे घरके आँगन या छतपर ही घूम लिया जाय। नौकर-नौकरानियाँ होनेपर भी प्रतिदिन कुछ शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिये।

न करनेकी आठ बातें

(१) मैथुन बिलकुल न करना, (२) टट्टी-पेशाबकी हाजत न रोकना, (३) बहुत तेज चलनेवाली सवारियोंपर न चढ़ना, (४) कूद-फाँद या दौड़-भाग न करना, बहुत टेढ़ा-मेढ़ा न होना, टेढ़ी करवट न लेना, (५) बोझ न उठाना, (६) परिश्रम करना; परंतु ऐसा काम न करना जिससे थकावट हो, (७) दिनमें न सोना

और रातको न जागना और (८) मन खिन्न हो, ऐसा कोई काम न करना। गर्भके अन्तिम दो महीने गर्भिणीको विशेष आरामकी आवश्यकता है; क्योंकि इस समय बच्चेका वजन ३.५ से ७.५ पाउण्डतक होता है।

ये तो प्रधान हैं। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कार्य भी नहीं करने चाहिये—जैसे सदा चित होकर सोना, बहुत जोरोंसे बोलना या हँसना, उकड़ू बैठना, बहुत सीढ़ियाँ चढ़ना, अकेले कहीं जाना या सोना, क्रोध-शोक-भय आदि करना, मैले, विकलांग या विकट आकृतिके व्यक्तियोंका स्पर्श करना, दुर्गन्ध, बीभत्स दृश्य या पदार्थका सूँघना, देखना, जनशून्य घरमें रहना, अधिक तेल मसलना या हल्दी-उबटन आदिसे शरीर मलना, लाल रंगकी साड़ी पहनना और किसी दूसरी स्त्रीके प्रसवके समय उसके पास रहना। इनके करनेसे भी गर्भको हानि पहुँचनेकी सम्भावना है।

गर्भ-धारणके बाद सातवें महीनेसे लेकर बालकके प्रसव होनेके समयतक स्तनोंकी भलीभाँति देख-रेख करनी चाहिये। स्तनोंको अच्छी तरह धोना चाहिये और उनकी बोंटीके चारों ओर घी लगाना चाहिये तथा उन्हें दिनमें दो-तीन बार हलके हाथसे खींचना चाहिये जिससे बोंटी बच्चेके स्तन पीनेके लिये काफी बड़ी हो जाय।
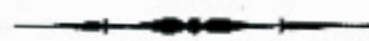
१२ प्रसूति-घर कैसा हो ?

प्रसूति-घर साफ सुन्दर हो, उसमें सूर्यकी किरणें तथा हलकी हवा आती हो, धरतीमें नमी न हो, आस-पासमें गन्दे नाले न हों, पाखानेकी दुर्गन्ध न आती हो, ताजा चूना पुता हुआ हो। कमरेमें सामान हो तो उसे वहाँसे हटा देना चाहिये। जाड़ेका मौसम हो तो उसे आवश्यकतानुसार गरम कर लेना चाहिये, पर उसमें रात-दिन अँगीठी नहीं जलानी चाहिये। स्त्रियाँ प्राय: रात-दिन अँगीठी रखती हैं और उसमें लकड़ी-कंडे जलाती रहती हैं। कई जगह ऐसा भी देखा गया है कि एक ओर अँगीठीमें आग धधकती रहती है, दूसरी ओर मिट्टीके तेलकी लालटेन जलती रहती है और किवाड़ बन्द कर दिये जाते हैं। परिणाम यह होता है कि आगका और लालटेनका धुआँ मिलनेसे जहरीली गैस पैदा हो जाती है और कमरेके अन्दरके सब लोग दम घुटकर मर जाते हैं। यह बहुत ही बुरी चीज है, इससे बचना चाहिये। प्रसूति-घरमें मिट्टीके तेलकी लालटेन न जलाकर तिलके तेलका दीपक जलाना चाहिये। इसकी ज्योति ठण्डी रहती है और जच्चा-बच्चाकी आँखोंको स्वस्थ रखती है। प्रसूति-घरको धूप, चन्दन आदिसे सुगन्धित रखना चाहिये। प्रसवके पहले उसमें शान्ति-पाठ, हवन, गौ, ब्राह्मणका आवाहन-पूजन, अग्नि और वरुणकी पूजा करायी जाय तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मांगलिक वस्तु देकर स्वस्तिवाचन कराया जाय तो बहुत उत्तम है।

बुद्धिमती, अनुभववाली, साध्वी तथा सदाचारिणी स्त्रियाँ वहाँ रहें जो गर्भिणीको मधुर वचनोंसे सान्त्वना दें, हर्ष बढ़ानेवाली बातें करें और उसे आशीर्वाद दें तथा मधुर स्वरसे भगवान्‌का नाम-कीर्तन करें तो प्रसूति-घर कल्याणकारी होता है। प्रसव-

स्थानपर काकजंघा, मकोय, कोषातकी, बृहती और मुलैठी—इन सबकी जड़ोंको पीसकर लेप देना चाहिये। इससे बालककी रक्षा होती है और रोगादिका सहज ही प्रवेश नहीं होता।

जच्चाके लिये अच्छी कसी हुई चारपाई या तख्ता हो, उसमें जूँ, खटमल आदि जीव बिलकुल न रहें। स्वच्छ गुदगुदा बिछौना हो। साफ धुली हुई चद्दर हो। चारपाई या तख्तेका सिरहाना ऊँचा हो। प्रसव होनेसे पहले ही गर्भिणीको अच्छी अनुभवी दाई देख ले और उचित व्यवस्था कर दे तो बहुत उत्तम है, प्रसूति-घरमें नीचे लिखी चीजें पहलेसे होनी चाहिये—

(१) अच्छा पलंग या तख्ता,
(२) मोमजामा,
(३) प्रसूतिके लिये दो मोटे सोख्ते (Absorbent pads)
(४) पेटपर लपेटनेके लिये गरम तथा मोटा कपड़ा,
(५) एक या दो साफ अँगोछे,
(६) पानी सोखनेवाली रूई (साधारण रूईको बाईकारबोनेट आफ सोडा और पानीमें उबालनेसे यह घरपर भी बनायी जा सकती है),
(७) पोंछनेके लिये धुले हुए कपड़े,
(८) साफ रूईके पहल,
(९) मीठा तेल,
(१०) शुद्ध देशी साबुन,
(११) पेटपर पट्टी लपेटकर अटकानेके लिये कुछ आलपीनें,
(१२) बच्चेको लपेटनेके लिये फलालैन, कम्बल या अन्य किसी गर्म कपड़ेका टुकड़ा,
(१३) तेज और साफ गरम पानीमें उबाला हुआ कैंची या चाकू,
(१४) नालके लिये गरम पानीमें उबाला हुआ रेशमी धागा,

(१५) डिट्टोल (Dettol) जन्तुनाशक दवाकी शीशी,
(१६) अरगट मिक्स्चर एक ड्राम,
(१७) बोरिक एसिड एक पाउण्ड,
(१८) तीन-चार रकाबी या प्याले,
(१९) गरम और ठण्डा पानी अलग-अलग पर्याप्त परिमाणमें और
(२०) बच्चेकी आँखके लिये दवाका पानी (बोरिक लोशन)।

प्रसवके समय बड़ी सावधानीसे काम किया जाय। जरा-सी भूलमें जच्चा-बच्चाके प्राणोंपर विपत्ति आ सकती है। उस समय मन-ही-मन भगवन्नाम-जप, भगवान्‌की प्रार्थना करते रहना चाहिये। प्रसूति-घरमें इस समय ऐसी स्त्री नहीं रहनी चाहिये जिससे प्रसूतिका मन न मिलता हो या परस्परमें द्वेष हो, नहीं तो बच्चेकी हानि तथा जच्चाको हिस्टीरिया अथवा प्रेत-बाधा-जैसा रोग हो सकता है।

प्रसवके बाद माता और बच्चा—दोनोंके स्वास्थ्यकी सावधानीसे रक्षा करनी चाहिये। इस समय माताको मानसिक और शारीरिक खूब आराम मिलना चाहिये। प्रसवके प्रायः दस दिन बादतक रक्तस्राव या अन्यान्य प्रवाही द्रव्योंका स्राव होता रहता है, इसलिये जन्तुनाशक डिट्टोल आदि दवाका व्यवहार किया जाना चाहिये। इससे दुर्गन्ध नहीं पैदा होगी। जन्तुनाशक दवामें उबाला हुआ छोटे तौलियेसे अथवा शुद्ध रूईके पहलसे योनिको ढकना और उसे बार-बार बदलना चाहिये। माता बच्चेको दूध पिलाती होगी तो गर्भाशय तुरन्त अपनी साधारण स्थितिमें आ जाता है। उसके सामान्य स्थितिमें आनेमें प्रायः डेढ़ महीना लगता है; परंतु पेड़ूमें सामान्य स्थिति दस दिनमें आ जाती है। इसलिये माताको कई सप्ताह आरामकी आवश्यकता है, परंतु बिछौनेपर पड़े ही नहीं रहना चाहिये। बैठना चाहिये। तैल आदि मालिश कराना चाहिये। इससे स्नायु शीघ्र सामान्य स्थितिमें आ जाते हैं।

कमरेको साफ स्वच्छ रखना चाहिये। उसमें मल-मूत्र न पड़ा रहे। पात्र धोकर सदा साफ रखे जायँ । जच्चा-बच्चाके कपड़े खून, मल, मूत्र आदिमें न सनने पावें। घरका आँगन साफ रहे। प्रातः-सायं नीम, गुग्गुल, धूप आदि सुगन्धित द्रव्योंकी धूप दी जाय। कमरेमें दुपहरको धूप आने दी जाय। वहाँ सात्त्विक शुद्ध अच्छी बातें हों। वातावरण सर्वथा सात्त्विक रहे। ऐसा करनेसे जच्चा-बच्चा स्वस्थ रहते हैं और उनके मनपर बड़ा सुन्दर प्रभाव पड़ता है।

प्रसवके बाद दूसरे दिनसे लेकर कम-से-कम एक सप्ताहतक माताको दशमूलका क्वाथ पिलाया जाय तो माता और बच्चेके स्वास्थ्यपर बहुत अच्छा असर पड़ता है।

प्रसवके समय बहुत पीड़ा होती हो और बच्चा न होता हो तो कैमोमिला १२ (होमियोपैथिक) दवा एक खुराक दे दें तो सुखपूर्वक बच्चा हो जायगा। एक खुराकसे न हो तो आधे घंटे बाद एक खुराक और दे दें। कण्टकारीकी जड़ हाथ-पैरमें बाँध देनेसे शीघ्र प्रसव होता है। फूल न आये हों ऐसे इमलीकी छोटे वृक्षकी जड़ सिरके सामनेसे बालोंसे बाँध दी जाय, इससे सहज प्रसव हो जाता है, परंतु सन्तान प्रसव होते ही तुरन्त उसी क्षण बालोंसमेत उसे कैंचीसे काट डालना चाहिये। बंगालमें सादा माकाल नामक एक पौधा होता है, उसकी जड़ कमरमें बाँध देनेसे भी तुरन्त प्रसव होता है, पर उसे भी बच्चा होते ही उसी क्षण अवश्य खोल देना चाहिये।

वटके पत्तेपर नीचे लिखा यन्त्र तथा मन्त्र लिखकर गर्भिणीके मस्तकपर रख देनेसे भी सुखपूर्वक प्रसव होता देखा गया है।

मन्त्र—

अस्ति गोदावरीतीरे जम्भला नाम राक्षसी।
तस्याः स्मरणमात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत्॥

[यन्त्र]

१	८	९	१४
११	१२	३	६
७	२	१५	८
१३	१०	५	४

निम्नलिखित मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल पिलानेसे भी सारी बाधाएँ दूर होकर सुख-प्रसव होता है और जच्चा-बच्चाका कल्याण होता है।

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

१३ एक प्रसवसे दूसरे प्रसवके बीचका समय कितना हो ?

आजकल जो जवान स्त्रियों और बच्चोंको लगातार बीमारियाँ भोगनी पड़ती हैं और उनकी मृत्यु भी अधिक होती है, इसमें 'असंयम' एक प्रधान कारण है। विषयभोगकी अतिशयता जैसे पुरुषके लिये घातक है, वैसे ही स्त्रीके लिये भी अत्यन्त हानिकारक है। अधिक विषय-सेवनसे स्त्रियोंको कब्ज, उदरपीड़ा, प्रदर, दुर्बलता, योनिभ्रंश, सिरपीड़ा, क्षय और प्रसूतिके विविध रोग हो जाते हैं। कम उम्रकी वधुएँ तो रात-दिन सिर दुखने, भूख न लगने, जी मचलाने, सफेद रस बहने और पेट तथा पेड़ूमें दर्द होने आदि रोगोंके कारण अनवरत यन्त्रणा भोगती रहती हैं, इसका प्रधान कारण 'अतिशय विषयभोग' ही है। अधिक विषय-भोगसे गर्भस्राव तो होता ही है; सन्तान भी दुर्बल, अल्पजीवी, रोगी, मन्द-बुद्धि, चरित्रहीन और अधार्मिक होती है। उनमें विकास और संवर्धनकी शक्ति भी बहुत कम पायी जाती है।

अतिशय विषयभोगसे स्त्रियोंको विविध रोग लग जाते हैं, उनका यौवन अकालमें ही नष्ट हो जाता है, कुछ ही वर्षोंमें जवान उम्रमें ही वे बूढ़ी हो जाती हैं। धर्मसे रुचि हट जाती है। शरीरपर आलस्य छाया रहता है। अग्निमें घी डालनेसे जैसे अग्नि बढ़ती है, वैसे ही अतिरिक्त भोगसे भोगकामना उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। दाम्पत्य सुखमें कमी आ जाती है, आयु घट जाती है और सदा-सर्वदा रोगिणी रहनेसे घरमें पति आदिके द्वारा असत्कार प्राप्त होनेके कारण उसकी मानस-पीड़ा भी बढ़ जाती है। अतएव दम्पतिको चाहिये कि वे नीरोगता, धार्मिकता, उत्तम स्वस्थ सन्तान और दीर्घ आयुकी प्राप्तिके लिये अधिक-से-अधिक संयम करें।

यह स्मरण रखना चाहिये कि विषय-सेवन विषय-सुखके लिये नहीं है, सन्तानोत्पत्तिरूप धर्मपालनके लिये है। अतएव धर्मानुकूल विषय-सेवन ही कर्तव्य है। भगवान्‌ने कहा है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

'हे अर्जुन! प्राणियोंमें धर्मसे अविरुद्ध काम मैं हूँ।' इसी दृष्टिसे शास्त्रानुसार ऋतुकालमें कम-से-कम विषय-संसर्ग करना चाहिये। गर्भाधान हो जानेपर विषय-संसर्ग सर्वथा बन्द कर देना चाहिये।

प्रसवके बाद बच्चा जबतक स्तनपान करता रहे, तबतक तो विषयभोग करना ही नहीं चाहिये। लगभग पौने दो वर्षतक स्तनपान कराना उचित है। जिन बच्चोंको स्वस्थ माताका स्नेहपरिपूर्ण दूध मिलता है, उनका जीवन सब प्रकारसे सुखी होता है। असंयमजनित विघ्न नहीं होगा तथा माताका शरीर स्वस्थ रहेगा तो पौने दो वर्षतक स्तनोंमें पर्याप्त दूध आता रहेगा। स्तनपान बन्द करानेके पश्चात् उतने ही कालतक माताके शरीरको आराम पहुँचे, इस निमित्तसे सम्भोग नहीं करना चाहिये। इसके बाद डेढ़ सालका अवकाश पुष्ट और दीर्घजीवी सन्तानके निर्माणयोग्य स्थिति प्राप्त करनेके लिये और मिलना चाहिये। इस प्रकार सन्तानोत्पत्तिके बाद लगभग पाँच सालतक संयमसे रहना उचित है।

शिशुके स्तनपान छोड़ते ही सम्भोग करना 'अधम' है। स्तनपान छोड़नेके बाद उतने ही समयके बाद सम्भोग करना 'मध्यम' है और पूरे पाँच साल बीतनेपर सम्भोग करना सर्वश्रेष्ठ है। इतना न हो सके तो कम-से-कम पहली सन्तानके बाद दूसरी सन्तान उत्पन्न होनेमें बीचका समय पाँच सालका तो होना ही चाहिये। ऐसा करनेसे दस महीने पूर्व ही विषय-सम्भोग किया जा सकता है।

संयमशील माता-पिताके पवित्र उद्देश्यसे प्रेरित संसर्गसे ही सत् सन्तानकी उत्पत्ति सम्भव है। सोलह वर्षसे पैंतीस वर्षकी उम्रतक संयमका पालन करते हुए तीन-चार सन्तान हो जायँ तो पर्याप्त है।

इससे सन्तान भी श्रेष्ठ होगी और उसके माता-पिता भी सुखसे रहेंगे। जितनी ही कमजोर सन्तान अधिक होगी, उतना ही उनके पालनमें श्रम, व्यय, क्लेश, उनके लगातार रोगी रहने तथा अकालमें ही मरनेका सन्ताप भी अधिक होगा। अधिक सन्तान होनेसे उनका लालन-पालन भी सावधानी तथा प्यारसे नहीं हो पायेगा और सारा समय इसीमें लग जायगा; किसी भी शुभकर्म, लोकसेवा, देशसेवा और मानव-जीवनके परम ध्येय भगवत्प्राप्तिके लिये सत्संग, तीर्थसेवन, भजन आदिके लिये समय ही नहीं मिलेगा। यह बहुत बड़ी हानि है; क्योंकि मानव-जीवन इससे सर्वथा असफल हो जाता है।

फिर, बहुत-सी अयोग्य सन्तान होनेकी अपेक्षा सुयोग्य एक-दो सन्तानका होना भी बहुत महत्त्व रखता है। बरसाती कीड़े एक ही साथ लाखोंकी संख्यामें पैदा होते हैं, सर्पिणी दो-ढाई सौतक बच्चे एक साथ पैदा करती है और उनमेंसे अधिकांशको आप ही खा जाती है। कुतियोंके पाँच-सात पिल्ले एक साथ होते हैं; परंतु उनका क्या महत्त्व है? महाराज राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्र अपनी माँके एक ही थे, भीष्म एक ही थे, शंकराचार्य एक ही थे, पर उनका कितना महत्त्व है। महत्ता गुणोंमें है, संख्यामें नहीं। वस्तुतः महत्त्वपूर्ण और सफल सन्तान तो वही है जो भगवान्‌का भक्त हो। नहीं तो पशुमादाकी तरह मानव-स्त्री भी पशु-सन्तान ही ब्याती है—सुपुत्र नहीं जनती।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

१४ बच्चोंका जीवन-निर्माण मताके हाथमें है

कोमल वस्तुपर प्रभाव अत्यन्त शीघ्र किन्तु स्थायी पड़ता है। छोटे कोमल पौधेको माली जैसे चाहता है, वैसे झुका देता है; कच्चे मिट्टीके बर्तनको कुम्भकार अपने इच्छानुसार आकृति दे डालता है। ठीक यही दशा बालकोंकी है। उनकी प्रकृति, उनकी बुद्धि, उनका स्वभाव, मस्तिष्क, हृदय आदि इतने सरल और कोमल होते हैं कि उनपर आप जो संस्कार डालना चाहें, डाल दीजिये; आपको किसी प्रकारका परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। बालकोंका हृदय उस स्वच्छ एवं सफेद वस्त्रके समान है, जिसपर किसी प्रकारका रंग नहीं चढ़ा है। अतएव इस अवस्थामें बालकोंकी शिक्षा-दीक्षापर ध्यान देना परम आवश्यक है।

अनुकरणकी प्रवृत्तिसे ही बच्चेकी शिक्षा प्रारम्भ होती है, यह शक्ति बालकोंमें जन्मजात होती है। बच्चेका बाल्यकाल प्रधानतः माताकी गोदीमें बीतता है। वह खाता है तो माँकी गोदीमें; खेलता है तो माँकी गोदीमें और सोता है तो माँकी गोदीमें। अतएव उसके जीवनका निर्माण माँके हाथमें है। माता चाहे तो अपने आचरणद्वारा बच्चोंको सदाचारी, ईश्वरभक्त, कर्तव्यपरायण, शान्त, धीर,वीर एवं गम्भीर बना सकती है और वह चाहे तो उसे चोर, लबार, पाखण्डी, कामी, क्रोधी, डरपोक आदिके रूपमें परिणत कर सकती है। विश्वके इतिहासमें आजतक जितने भी महापुरुष हुए हैं, सब माताओंकी देन हैं।

माताका हृदय स्नेहमय है। वह अपने सात्त्विक स्नेहके द्वारा बच्चेके जीवनमें सरसता उत्पन्न करती है; किन्तु अच्छी-बुरी सभी

वस्तुओंकी एक सीमा है। स्नेह भी जब विवेककी सीमाको लाँघकर आगे बढ़ता है तो वह घातक हो जाता है। बच्चोंके बिगड़नेमें अधिकतर यही बात होती है। देखा गया है कि विवाहके बहुत वर्षोंके बाद सन्तान उत्पन्न हुई या कई सन्तान मरनेके बाद पुत्रका जन्म हुआ या कई लड़कियोंके पश्चात् लड़केके जन्मका सौभाग्य प्राप्त हुआ अथवा एक पुत्र होनेके बाद और सन्तान न हुई, धनका प्राबल्य हुआ—आदि-आदि अनेक स्थितियाँ ऐसी हैं, जिनमें स्वभावतः माता-पिता (विशेषतया माता) बच्चेको इतना स्नेह करने लगते हैं कि दिन-रात बच्चा उनकी गोदमें ही झूलता रहता है। धरती छूनेका अवसरतक नहीं मिलता। परिणामतः उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, कभी-कभी तो उसके नीचेके अंग एकदम बेकार हो जाते हैं और वह पंगु बन जाता है। लड़कोंको जिद्दी बनानेमें भी यही स्नेह हेतु होता है। कुछ माताएँ स्नेहके कारण बच्चोंको शिक्षाके लिये अपनेसे पृथक् नहीं करतीं। वे सोचती रहती हैं—'मेरे लालकी उम्र ही क्या है, अभी तो दूधके दाँत भी नहीं टूटे। सारी उम्र पड़ी है, पढ़ लेगा। न पढ़ेगा तो भी क्या है? किसीसे भीख थोड़े ही माँगने जाना है। ईश्वरने दे रखा है, इसीसे काम चल जायगा।' इससे बच्चा शिक्षासे वंचित रह जाता है और भविष्यमें बड़ा कष्ट उठाता है। बहुत बार यह भी देखनेमें आता है कि लड़का कुसंगसे अथवा बालचपलतासे भाँति-भाँतिके अनुचित कार्य करने लगता है—जैसे घरसे बाहर आवारा घूमना, पतंग उड़ाना, ताश-चौपड़-गोली आदि खेलना, जूआ खेलना, लड़कोंके साथ मिलकर राह जाते हुए व्यक्तियोंको, पशुओंको तंग करना, पक्षियों-जन्तुओं आदिपर पत्थर फेंकना, चींटी आदिको हाथसे या पैरसे नोच डालना, बीड़ी पीना, अश्लील शब्द बोलना, घरसे चुपचाप रुपये-पैसे आदि निकालकर बाजारमें उनके बदले चीजें खरीदना आदि-आदि और माता-पिताको इनका पूर्ण ज्ञान भी होता है, किंतु बच्चेके स्नेहके कारण

वे उसे कुछ भी नहीं कहते; उलटे उसके नटखटपनपर प्रसन्न होते हैं, यह बहुत ही घातक है। यह बच्चेके प्रति स्नेह नहीं, अन्याय है। इससे बच्चेका जीवन नष्टप्राय हो जाता है।

प्रकृतिभेदके अनुसार आजकल कुछ माताओंमें वात्सल्य-स्नेहका अभाव पाया जाता है। वे अज्ञानतावश अथवा फैशनकी गुलाम होकर अपने व्यक्तिगत सुख-आरामको प्रधानता देती हैं और बच्चोंके कार्यको गौणता। फैशनकी पुतलियाँ आजकी कुछ शिक्षिता कहलानेवाली नारियाँ, जो स्त्री-पुरुषके सम्बन्धको पाशविक मनोविकारकी पूर्तिका साधनमात्र समझती हैं; जन्म देते ही बालकको अपनेसे पृथक् कर डालती हैं। बच्चेको दूध पिलाना, पालना, शिक्षित करना आदि सब काम धायपर पड़ जाता है। बालकका जीवन किस प्रकार बीत रहा है, इसकी भी माँको कुछ चिन्ता नहीं रहती। फलतः दास-दासियोंके भरोसे रहनेसे उन लोगोंके सब प्रकारके अवगुण उस अनुकरणशील बच्चेमें आ जाते हैं और बेचारेका जीवन नष्ट हो जाता है। अमीरोंके लड़कोंके बिगड़नेमें यह एक बड़ा कारण है।

कितनी ही माताएँ खिला-पिलाकर बच्चेको स्कूल भेज देनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री मान लेती हैं। वे यह जाननेका कभी कष्ट भी नहीं उठातीं कि बच्चा स्कूलमें क्या पढ़ता है, किनके सम्पर्कमें रहता है, कैसे लड़कोंके साथ स्कूल आता-जाता है और क्या करता है। इससे माताओंको अवश्य कुछ अवकाश मिल जाता है; दिनभर लड़का घरपर रहकर भाँति-भाँतिके उपद्रव करता था, उससे माताको राहत मिल जाती है। किन्तु बच्चेकी जीवन-धारा किस ओर बह रही है, इससे माँ बेखबर रहती है। माँ बच्चेको सुधारनेके लिये स्कूलमें भेजती है, अतएव समझती है उसका सुधार हो रहा है, पर होता है उसका और भी पतन। आजकलकी स्कूली शिक्षाका जो दुष्परिणाम दिखायी दे रहा है, स्कूलोंमें बालकोंका जिस प्रकार चारित्रिक पतन हो रहा है, उसे देखते हुए तो यह

कहना पड़ता है कि बच्चेको स्कूलमें भेज देनेके बाद तो माता-पिताका दायित्व और भी बढ़ जाता है; क्योंकि विपत्तिकी सम्भावना भी उस समय बहुत बढ़ जाती है। अतएव माता-पिताको बालकोंको स्कूलमें भेजना प्रारम्भ करनेके बाद अपनेको दायित्वसे मुक्त नहीं समझ लेना चाहिये, प्रत्युत बालककी ओरसे और भी सतर्क रहना चाहिये।

बालकोंके पतनका तीसरा कारण है माता-पिताका उन्हें अधिक अनुशासनमें रखना। बड़े पेड़के नीचे छोटा पौधा नहीं पनपता, यदि पनपता भी है तो उस हिसाबसे नहीं, जिस हिसाबसे खुले स्थानमें। बस, बालकोंके लिये भी यही बात है। अधिक अनुशासन जहाँ हुआ, छोटी-छोटी बातपर जहाँ डाँट-फटकार होने लगी, वहीं बच्चेका जीवन मुरझा जाता है, वहीं उसकी विकासोन्मुख प्रतिभा नष्ट हो जाती है। कली खिलनेके पूर्व ही सूख जाती है, परिणाम यह होता है कि बच्चा या तो कायर और कमजोर हो जाता है तथा अपने चरित्रबलको खो बैठता है या ढीठ हो जाता है और किसीके कहने-सुननेकी कुछ भी परवा नहीं करता। अतएव माता-पिताको चाहिये कि वे बालकको संयममें तो रखें, पर अधिक डाँट-फटकार न दें; बाल-प्रकृतिकी स्वाभाविकता एवं सरलताको कुचल न डालें। जो बात जिस समय आवश्यक हो, उसी समय प्रेमसे समझाकर, यदि आवश्यक हो तो प्रेमपूर्वक साधारण डाँट-फटकार देकर कह देनी चाहिये। नहीं तो घातसे प्रतिघात होना स्वाभाविक ही है। पौधेकी रक्षाके लिये बाड़की आवश्यकता होती ही है, दीपक बिना आवरण ठीक प्रकाश नहीं देता तथा बहुत बार बुझ भी जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रेमपूर्ण तथा विवेकमय अनुशासनकी आवश्यकता है। विवेकपूर्ण अनुशासनमें यदि बालकको स्वतन्त्र छोड़ा जाय तो उससे उसकी प्राकृतिक गुप्त शक्तियोंका इतना विकास होता है कि वैसा अन्य किसी प्रकारसे सम्भव नहीं।

आचरणकी शक्ति अपार है। आचरणके 'मौनव्याख्यान' से वह कार्य हो जाता है, जो बड़े-बड़े सुधारक विद्वान् दिन-रात उपदेश देकर, गम्भीर-विवेचनात्मक लेख लिखकर तथा अन्य प्रकारकी शिक्षा-सम्बन्धी चेष्टा करके भी नहीं कर पाते। आचरणमें एक ऐसी दिव्य शक्ति है, जो दूसरेको स्वत: कर्तव्यकी ओर प्रेरित कर देती है। फिर बच्चे तो स्वभावसे ही नकल करनेवाले होते हैं। अतएव माता-पिताको अपना जीवन ठीक वैसा ही बनाना चाहिये, जैसा कि वे अपनी सन्तानको बनाना चाहते हैं। धातुकी मूर्तियाँ बनानेके लिये साँचेकी आवश्यकता होती है। बच्चोंके जीवनको ढालनेके लिये माता-पिताका जीवन ही साँचा है। माता-पिताको याद रखना चाहिये कि 'बच्चोंको मारकर, उनपर खीझकर उन्हें सदाचारी नहीं बनाया जा सकता। पहले खुद सदाचारी बननेसे ही वे सदाचारी बनेंगे। असंयमशील माता-पिताका यह आशा करना कि उनकी सन्तान पूर्ण सदाचारी बनेगी, दुराशामात्र है। इसलिये माता-पिताको शरीर, मन और वाणी—तीनोंमें संयम रखना चाहिये एवं सावधानीके साथ सदाचार-परायण रहना चाहिये।'

सन्ततिको योग्य बनानेके लिये माताका सुशिक्षित होना परम आवश्यक है। प्राय: देखा गया है कि जिस घरमें माता चतुर होती है, उसकी सन्तान भी बड़ी चतुर एवं गुणवान् होती है। लड़कियोंका जीवन तो पूर्णरूपसे मातापर ही निर्भर है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, बच्चोंके हृदयपर छोटी-छोटी बातोंका प्रभाव बहुत शीघ्र होता है। प्राय: देखा गया है कि माताएँ बालकोंमें डरनेकी आदत डाल देती हैं। जब कभी बच्चा दूध नहीं पीता, कपड़े नहीं पहनता, रातमें अधिक देरतक जगता रहता है, बिना कारण रोने लगता है अथवा इसी प्रकारकी कोई अन्य बात करता है तो माता-पिता उसे 'भूत', 'हौवा', 'चोर' आदिका डर दिखाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चेकी प्रकृति डरपोक हो जाती है। कहीं-कहीं तो यह भय जन्मभर बना रहता है।

बच्चेके लिखने-पढ़नेकी शिक्षाका भार भी मातापर ही रहना चाहिये। देखनेमें आया है कि स्कूलमें भर्ती होनेतक बच्चे खेलते ही रहते हैं, उन्हें कुछ भी शब्दज्ञान नहीं हो पाता। यह बहुत बुरा है। माता-पिताको चाहिये कि वे बच्चेको होश सँभालते ही मौखिक शिक्षा देना आरम्भ कर दें। यूरोपमें वस्तुपाठद्वारा बच्चोंको शिक्षा दी जाती है। बच्चे खिलौनेके शौकीन तो होते ही हैं अतएव सुन्दर-सुन्दर खिलौनोंके रूपमें काठ या किसी धातुके मोटे-मोटे अक्षर बना लिये जाते हैं और उन्हींको दिखाकर बालकोंको वर्ण-परिचय करा दिया जाता है। भारतमें भी इस प्रणालीका शीघ्र ही प्रचार होना चाहिये।

प्रायः देखा गया है कि हमारे देशके लड़के व्यावहारिक शिक्षामें एकदम शून्य रहते हैं। बड़े होने तथा शिक्षा प्राप्त करनेपर भी उनमें इस शिक्षाकी बड़ी कमी बनी रहती है। इसका दायित्व एकमात्र माता-पितापर है। वे स्नेहवश बच्चेमें खराब आदतको घर करने देते हैं। माता-पिता देखते रहते हैं कि बच्चा देरतक सोता रहता है, मैले-कुचैले कपड़े रखता है, पुस्तकोंको फाड़ डालता है, इच्छा आती है वहीं थूक देता है, अशिष्टतासे बोलता है, दस आदमियोंके बीच जानेमें संकोच करता है, कोई बात पूछी जाय तो नाकमें अँगुली देने लगता है तथा जैसे-तैसे भागनेका प्रयत्न करता है अथवा बड़ोंका अनादर करता है, बेमतलब बकता है, बात करते हुए बड़े-बूढ़ोंके बीचसे निकल जाता है, कहनेपर भी बात नहीं मानता और मुँह बनाता है—आदि-आदि, पर वे उसे कुछ भी नहीं कहते। परिणाम यह होता है कि उसका स्वभाव वैसा ही बन जाता है और वह जन्मभर बुद्धू या उद्दण्ड बना रहता है, अतएव माता-पिताको चाहिये कि वे निरन्तर ऐसी चेष्टा करें कि उनके बच्चे सदा-सर्वदा सदाचार और शिष्टाचारकी शिक्षा प्राप्त करते रहें।

माता-पिताको चाहिये कि धार्मिक शिक्षाका बीज भी अपनी

सन्तानमें बाल्यकालमें ही बो दें। इसका सबसे सीधा उपाय यही है कि प्रतिदिन सुबह-शाम बच्चोंको साथ लेकर कीर्तन करें, भगवद्भक्तिसम्बन्धी ललित पद गायें तथा भगवान्‌के दर्शनके लिये मन्दिरोंमें जायँ। बच्चोंको कहानी सुननेका शौक होता ही है, अतएव उन्हें भक्तोंके सुन्दर-सुन्दर चरित्र सुनाकर उनमें वैसा ही बननेकी इच्छा जाग्रत् करनी चाहिये। दीन-दु:खियोंको तथा पशु-पक्षियोंको बच्चोंके हाथसे अन्न, जल, रोटी आदि दिलानेसे उनके हृदयमें दयाभाव उत्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार आचरणद्वारा तथा मौखिकरूपसे स्पष्ट भाषण करने, किसी प्रकारका छिपाव न रखने, किसीकी कोई वस्तु बिना दिये न लेने, व्यर्थका झगड़ा न करने, सबका आदर करने, प्रेमसे हँसकर बोलने आदिकी शिक्षा भी बच्चोंको बाल्यकालसे ही माता-पिताद्वारा मिलनी चाहिये।

बालकोंपर ही परिवारका, समाजका, देशका तथा विश्वका भविष्य निर्भर करता है। अत: उनको शिक्षित करना कितना आवश्यक है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। माताओंको चाहिये कि वे अपने स्वरूपको समझें और अपने कर्तव्य-पालनमें लग जायँ। एक विद्वान्‌के इन वचनोंपर माताओंको सदा ध्यान देना चाहिये—'एक अच्छी माता सैकड़ों शिक्षकोंके बराबर है। वह परिजनोंके मनको खींचनेके लिये चुम्बक-पत्थर तथा उनकी आँखोंके लिये ध्रुवतारा है।'

१५ किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये?

सास-ससुर—हिन्दू-शास्त्रानुसार सास-ससुर वस्तुतः माता-पिताकी अपेक्षा भी अधिक पूजनीय और श्रद्धाके पात्र हैं; क्योंकि वे आत्माकी अपेक्षा भी अधिक प्रियतम पतिको जन्म देनेवाले उनके पूजनीय माता-पिता हैं। अपने हाथों उनकी सेवा करना, आज्ञा मानना, उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करना, उनकी अनुचित बातको भी सह लेना तुम्हारा धर्म है। सास-ससुर असलमें मानके भूखे होते हैं। जिन सास-ससुरने पाल-पोसकर तुम्हारे स्वामीको आदमी बनाया है, वे स्वाभाविक ही यह चाहते हैं कि बहू-बेटे हमारी आज्ञा माननेवाले हों और हमारे मनके विरुद्ध कुछ भी न करें। तुम्हें ऐसा कोई भी काम या आचरण नहीं करना चाहिये, जो उनको बुरा लगता हो। कहीं जाना हो तो पहले साससे पूछ लो। कपड़ा-लत्ता मँगाना हो तो पतिसे सीधा न मँगवाकर सासकी मारफत मँगवाओ। साससे बिना पूछे या उनके मना करनेपर कोई काम मत करो। रुपये-पैसेका हिसाब-किताब सासके पास रहने दो। रोज कुछ समयतक सासके पाँव दबा दिया करो और पतिको भी ऐसा कोई काम करनेसे सम्मानपूर्वक समझाकर रोक दो, जो उनके माता-पिताके मनके विरुद्ध हो। बस, तुम्हारे इन आचरणोंसे वे प्रसन्न हो जायँगे। वस्तुतः सास-ससुरको साक्षात् भगवान् लक्ष्मीनारायण समझकर उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सेवा करनी चाहिये। तुम सेवा तथा सद्व्यवहार करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करोगी तो तुम्हारा परम कल्याण होगा।

जेठ—भगवान्ने जिनको तुम्हारे स्वामीसे बड़ा और उनका भी पूजनीय बनाकर भेजा है, वे चाहे विद्या-बुद्धिमें हीन हों, तुम्हारे लिये

सदा ही आदर, सम्मान तथा सेवाके पात्र हैं। उनका हित करना, सेवा करना और उन्हें सुख पहुँचाना तुम्हारा धर्म है।

देवर—देवरको छोटा भाई मानकर उसका हित करना तथा उससे पवित्र सद्व्यवहार करना चाहिये। देवरसे हँसी-मजाक नहीं करना चाहिये और अपने पतिसे समय-समयपर कहकर देवरके मनकी बात करानी चाहिये, जिससे प्रेम बढ़े।

जेठानी-देवरानी—जेठानीको बड़ी बहिन और देवरानीको छोटी बहिन मानकर उनके प्रति यथायोग्य आदर-श्रद्धा, स्नेह और प्रेम रखना चाहिये। अपना स्वार्थ छोड़कर उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा करनी चाहिये तथा उनके बच्चोंको अपने बच्चोंकी अपेक्षा अधिक प्रिय जानकर उन्हें खाने-पीने, पहननेकी चीजें अच्छी और पहले देनी तथा उनका लाड़-प्यार करना चाहिये।

ननद—ननद तुम्हारी सासकी पुत्री और तुम्हारे स्वामीकी सगी बहिन है। उसका आदर-सत्कार सच्चे मनसे करना चाहिये और विवाहित हो तो अपनी शक्तिभर उसे खूब देना चाहिये। मातापर लड़कीका विशेष अधिकार होता है और माताका भी स्वाभाविक ही विशेष प्यार उसपर होता है। इसलिये माताके बलपर वह (ननद) तथा पुत्री—स्नेहके कारण उसकी माँ (तुम्हारी सास) तुम्हें कुछ कह ले या बर्तावमें कभी रूखापन करे तो भी तुम्हें परिस्थिति समझकर उनसे प्रेम ही करना चाहिये तथा सदा सद्व्यवहार ही करना चाहिये।

नौकर-नौकरानी—इनके प्रति विशेष प्यार और आदर रखना चाहिये। बेचारे तुम्हारी सेवा करते हैं, तुम्हारे सामने बोलनेमें संकोच करते हैं। इनको समयपर अच्छा खाना-पीना देना चाहिये। रोग-क्लेशमें पूरी सार-सँभाल रखनी चाहिये। अपने बर्तावसे इनके मनमें यह जँचा देना चाहिये कि ये इस घरके ही सदस्य हैं, पराये नहीं। जब यह तुम्हारे घरको अपना घर तथा तुम्हारे हानि-लाभको अपना हनि-लाभ मानने लगेंगे, तब तुम्हारे जीवनका भार बहुत कुछ हलका हो जायगा। कभी भूल होनेपर कुछ डाँटोगी तो ये समझेंगे कि हमारी माँ

हमारे भलेके लिये हमें डाँट रही है। नौकरोंसे दिनभर चख-चख करना बहुत बुरा है और गाली-गलौज करना तो बहुत बड़ी नीचता है।

अतिथि-अभ्यागत—सेवा तो नारी-जातिका स्वाभाविक गुण है। अतिथि-अभ्यागतकी शास्त्रसम्मत सेवा करनेसे महान् पुण्य तथा निष्काम सेवा होनेपर भगवत्प्राप्ति और लोकमें यश होता है। अवश्य ही लुच्चे-लफंगोंसे सदा बचना चाहिये तथा अकेलेमें तो किसी पुरुषसे कभी मिलना ही नहीं चाहिये।

आत्मीय स्वजन—परिवारके कोई सगे-सम्बन्धी कुछ दिनके लिये घरमें आ जायँ तो भार न समझकर उनका आदर-सत्कार करना चाहिये। ऐसा व्यवहार करना चाहिये, जिससे वे बहुत सुन्दर भाव लेकर अपने घर लौटें। उनको ऐसी एक आदर्श शिक्षा मिले कि दूर-सम्पर्कीय आत्मीय स्वजनोंके साथ गृहस्थको कैसा सुन्दर आदरपूर्ण तथा मधुर बर्ताव करना चाहिये। जरा-सा भी उनका असत्कार हो जायगा तो तुम्हारे लिये कलंककी बात होगी।

विपत्तिग्रस्त स्वजन—ऐसा अवसर भी आता है कि जब कोई असहाय, अभागा व्यक्ति दरिद्रताका शिकार होकर या किसी विपत्तिमें पड़कर अपने किसी आत्मीय स्वजनके घर पहुँच जाता है तो देखा गया है कि ऐसी अवस्थामें लोग उसका जरा भी सत्कार नहीं करते और लापरवाही दिखाते हैं। यह बड़ा ही निष्ठुर व्यवहार है और महान् अधर्म है। याद रखना चाहिये कि दिन पलटनेपर तुम्हारी भी यही दशा हो सकती है। ऐसा समझकर उसका विशेष आदर-सत्कार करना तथा अपनी शक्तिभर नम्रभावसे उसकी सहायता करनी चाहिये, अहसान जताकर नहीं।

बिपतिकाल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

पड़ोसी—पड़ोसियोंको अपने सद्व्यवहारसे अपना सच्चा मित्र बना लेना धर्म तो है ही, स्वार्थ भी है। बुरे समयमें मित्र पड़ोसियोंसे बड़ी सहायता मिलती है और वैरी पड़ोसियोंसे विपत्ति बढ़ जाया करती है। अतएव उनके प्रति सदा सम्मान, सत्य, प्रेम तथा उदारताका व्यवहार करना चाहिये। सम्मान, सत्य, प्रेम तथा हित करनेपर वैरी भी अपने हो जाया करते हैं।

१६ सास-ननदका बहू तथा भौजाईके प्रति बर्ताव

प्राय: देखा गया है कि दूसरोंके साथ अच्छा बर्ताव करनेवाली सद्गुणवती सास भी बहुओंके साथ बुरा बर्ताव कर बैठती है। पहले-पहल जब बहू ससुराल जाती है, तब उसे लज्जाके कारण बड़ी असुविधाएँ होती हैं। ससुरालमें किसका कैसा स्वभाव है, वह जानती नहीं। मनमें बड़ा संकोच रहता है। बीमार होती है, सिर-पेटमें दर्द होता है तो भी संकोचसे कुछ कहती नहीं। नया घर है। स्नेहसे पालनेवाले माता-पिता नहीं। ऐसी अवस्थामें उससे गलती भी हो जाती है। इसलिये सासका कर्तव्य और धर्म होता है कि वह उस अबोध बच्चीपर दया करे और उसके सुख-दु:खका विशेष ध्यान रखे। बहूकी किसी भूलपर रणचण्डी न बन जाय, उसको तथा उसके माँ-बापको जली-कटी न सुनावे। विचार करना चाहिये कि तुम्हारी बेटीको ससुरालमें ऐसा ही व्यवहार प्राप्त हो तो उसको कितना दु:ख होगा और तुम सुनोगी तो तुम्हें भी कितना कष्ट होगा। इसी प्रकार इसको और पता लगनेपर इसके माता-पिताको भी दु:ख होगा। यहाँ इसका कोई सहायक नहीं है। यह अपने मनकी बात किससे कहे। सासकी देखा-देखी यदि उसकी लड़की (ननद) भी अपनी भावजसे बुरा बर्ताव करने लगती है, तब तो उस बेचारीका दु:ख बहुत ही बढ़ जाता है। कहीं-कहीं तो माताके कहनेसे उसका पुत्र (बहूका पति) भी अपनी पत्नीको मारने-डाँटने लगता है। ऐसी अवस्थामें वह बेचारी मन-ही-मन रोती-कलपती है। कहीं-कहीं तो इसी दु:खसे बहुएँ आत्महत्यातक करनेको मजबूर होती हैं!!

अतएव सासको चाहिये कि बहूको अपनी बेटीसे अधिक प्रिय

समझकर उससे प्यार करे। अपने सद्व्यवहारसे उसके मनमें यह बैठा दे कि मेरी सास साक्षात् लक्ष्मी है और मेरी मातासे भी बढ़कर मुझसे प्रेम करती है। सासको समझना चाहिये कि बहू ही उसके कुलकी रक्षा करनेवाली, उत्तम सन्तान उत्पन्न करके उसके पतिका नाम अमर करनेवाली है।

ननदको समझना चाहिये कि अपने पीहरके कुलदीपक—भाईकी पत्नी होनेके कारण भावज उसके लिये अत्यन्त आदरकी पात्री है। उससे ईर्ष्या-डाह कभी नहीं करनी चाहिये। वह सासके कुछ कहनेमें तो सकुचाती है, इसलिये सगी बहनकी भाँति उससे प्यार करके उसके मनकी सुख-दुःखकी बात पूछनी चाहिये। उससे कभी भूल हो जाय तो अपनी मातासे उसको छिपा लेना चाहिये और माता कभी नाराज हो तो उसे समझाकर शान्त करना चाहिये। ननदको विचार करना चाहिये कि मेरी ससुरालमें मैं अपनी ननदसे जैसा सुन्दर बर्ताव चाहती हूँ, वैसा ही मुझे भी यहाँ अपनी भावजके साथ करना चाहिये।

यह देखा गया है कि सास-ननद अपने बुरे बर्तावसे बहूका मन इतना खिन्न कर देती हैं कि उसके कारण कई जगह तो छोटी उम्रकी बहुएँ 'हिस्टीरिया' रोगसे ग्रसित हो जाती हैं और मन-ही-मन सास-ननदको शाप देती हुई अकालमें मर जाती हैं। हिस्टीरिया रोग प्रायः उन नववधुओंको ही अधिक होता है, जिनको अन्दर-ही-अन्दर मन मसोसकर दुःख-क्लेश सहने पड़ते हैं। इस मानसिक दुःखसे उनकी रज-व्यवस्था बिगड़ जाती है तथा हिस्टीरिया या मन्दाग्नि हो जाती है। और यदि कहीं बहू भी उग्र स्वभावकी हुई—(पहले न होनेपर भी बहुत अधिक असत्कार और दुर्व्यवहार प्राप्त होनेपर उसमें उग्रता जाग्रत् हो जाती है) तो घरमें दिन-रात कलह मचा रहता है। एक तरफ सास रोती है, दूसरी तरफ बहू। ऐसी हालतमें बेचारे पतिकी दुर्गति होती है। वह यदि माँकी तरफ होकर

पत्नीको कुछ कहता-सुनता है तो वह आत्महत्याको तैयार होती है और माताको कुछ कहता है तो माता नाराज होती है और पत्नीमें लड़नेका साहस बढ़ता है। मतलब यह कि घरकी सुख-शान्ति नष्ट हो जाती है। अतएव सास-ननदको बहू-भावजके साथ बहुत ही उत्तम बर्ताव करना चाहिये। सच्चा धर्म वही है कि जैसा बर्ताव आदमी दूसरोंसे चाहता है वैसा ही दूसरोंके साथ पहले स्वयं करे। **'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'** जो बर्ताव अपने मनके प्रतिकूल हों, वे दूसरोंके प्रति कभी न करे।

१७ नारीके भूषण

सौन्दर्य—(१) सुन्दर वर्ण, सुडौल अंग-प्रत्यंग, मनोहर चाल, दृष्टि, भाव-भंगी तथा तोड़-मरोड़ आदिमें सुहावनापन और वाणीमें माधुर्य—यह बाहरी सौन्दर्य है।

(२) क्षमा, प्रेम, उदारता, निरभिमानता, विनय, सहिष्णुता, समता, शान्ति, धीरता, वीरता, परदुःखकातरता, सत्य, सेवा, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, शील और प्रभुभक्ति आदि सद्‌गुण तथा सद्भाव भीतरी सौन्दर्य है।

बाहरी तथा भीतरी दोनों ही आवश्यक हैं; परन्तु बाहरीकी अपेक्षा भीतरीका महत्त्व अधिक है। रूपवती नारियोंको रूपका गर्व न करके अपने अन्दर सद्‌गुणों तथा सद्भावोंके सौन्दर्यको बढ़ाना चाहिये।

लज्जा—धर्मविरुद्ध, शीलके विरुद्ध और समाजकी पवित्र प्रथाओंके विरुद्ध कुछ भी करनेमें महान् संकोच और पुरुष-समाजके संसर्गसे बचनेके लिये होनेवाले दृष्टि-संकोच, अंग-संकोच और वाणी-संकोचका नाम 'लज्जा' है। लज्जा नारीका भूषण है और यह शीलभरी आँखोंमें रहता है। बीमार एवं बड़ोंकी सेवामें तथा कर्तव्य-पालनमें लज्जाके नामपर तत्पर न होना लज्जाका दुरुपयोग एवं मूर्खता है। साथ ही अबाध पुरुष-संसर्गमें निःसंकोच जाना-आना लज्जाका निरंकुश नाश है, जो नारीके शीलके लिये अत्यन्त घातक है।

विनय—वाणीमें, व्यवहारमें तथा शरीर-संचालनमें गर्व, उग्रता, कठोरता तथा टेढ़ेपनका त्याग करके नम्र, सरल, स्नेहपूर्ण आदरभावयुक्त और मधुर होना 'विनय' है। विनयका अर्थ न तो चापलूसी है, न कायरता। दुष्टोंके दमनमें कठोरता और उग्रता आवश्यक है, पर घर-परिवार तथा संसारके अन्य सभी व्यवहारोंमें नारीको विनयरूप भूषण सदैव धारण किये रहना चाहिये।

संयम-तप—शरीर, मन और वाणीको विषयोंकी ओरसे यथासाध्य

हटाये रखना तथा उनको कभी भी अवैध तथा अकल्याणकारी कार्यमें न लगने देनेका नाम 'संयम' है। इसीको 'तप' भी कह सकते हैं। गीतामें भगवान्‌ने बतलाया है—(१) देव, द्विज, गुरुजन और ज्ञानीजनोंकी पूजा, शरीरकी शुद्धि, सरलता (शरीरकी सौम्यता), ब्रह्मचर्य (पर-पुरुष अथवा पर-स्त्रीका सर्वथा त्याग एवं पति-पत्नीमें शास्त्रोक्त सीमित संसर्ग) तथा अहिंसा (किसीको भी चोट न पहुँचाना)—यह शारीरिक तप है; (२) किसीको घबराहट न पैदा करे ऐसी सच्ची, प्रिय और हितकारी वाणी बोलना तथा भगवन्नामका उच्चारण करना एवं परमार्थ-ग्रन्थोंको पढ़ना—यह वाणीका तप है और (३) मनकी प्रसन्नता, मनकी सौम्यता, मनका मौन (अन्य चिन्तनसे रहित केवल भगवच्चिन्तनपरायण होना), मनका वशमें रहना और मनका पवित्र भावोंसे युक्त रहना—यह मनका तप है। शरीर, वचन और मनसे होनेवाली तमाम कुप्रवृत्तियोंसे उनको हटाकर इन सत्प्रवृत्तियोंमें लगाये रखना ही संयम है।

सन्तोष—परश्रीकातरता, असहिष्णुता, लोभ और तृष्णाके वशमें न होकर भगवान्‌की दी हुई अपनी स्थितिमें सन्तुष्ट रहना 'सन्तोष' है। सन्तोषसे चित्तकी जलन मिटती है। द्वेष, विषाद और क्रोधसे रक्षा होती है एवं परम सुखकी प्राप्ति होती है।

क्षमा—अपना अहित करनेवालेके व्यवहारको सह लेना अक्रोध है और उसको अपने तथा दूसरे किसीके द्वारा भी बदलेमें दुःख न मिले एवं उसकी बुद्धि सुधर जाय, इस प्रकारके सद्भावका नाम 'क्षमा' है। अक्रोध अक्रिय है, क्षमा सक्रिय। क्षमा कायरोंका नहीं,वरं वीरोंका धर्म है।

धीरता-वीरता—दुःख, विपत्ति, कष्ट और भयके समय भगवान्‌के मंगलमय विधानपर भरोसा रखकर तथा 'विपत्ति सदा नहीं रहती बादल आते हैं, आकाश काला हो जाता है, फिर बादल हटते हैं और सर्वत्र प्रकाश फैल जाता है'। इस प्रकार समझकर अपने

कर्तव्यका पालन करते हुए मैदानमें डटे रहना 'धीरता' है और इसीके साथ-साथ विरोधी शक्तियोंको निर्मूल करनेका साहस तथा बुद्धिमानीसे युक्त प्रयत्न करना 'वीरता' है।

गम्भीरता—समझकर मधुर थोड़े शब्दोंमें बोलना, व्यर्थ न बोलना, हँसी-मजाक न करना, विवाद न करना, छिछोरपन न करना, चपलता-चंचलता न करना, प्रत्येक कार्यको खूब सोच-विचारकर दृढ़ निश्चयके साथ करना, शान्त और शिष्ट व्यवहार करना, झगड़े-टंटेमें न पड़ना, जरा-सी विपत्ति या घरमें कोई काम आ पड़नेपर विचलित न हो जाना और बड़ी-से-बड़ी बातको जिसके प्रकट होनेसे कोई हानि होती हो अथवा किसीको दुःख होता हो, किसीका अहित होता हो, उसे पचा जाना 'गम्भीरता' है। गम्भीर स्त्रीका तेज सब मानते हैं तथा उसका आदर करते हैं और वह भी बहुत ही व्यर्थकी कठिनाइयोंसे बच जाती है।

समता—सबमें एक ही आत्मा है, अथवा प्राणिमात्र सब एक ही प्रभुकी अभिव्यक्ति या सन्तान हैं, यह समझकर मनमें सबके प्रति समान भाव रखना, सबके दुःखको अपना दुःख समझना, सबके हितमें अपना हित मानना 'समता' है। व्यवहारमें तो प्रसंगानुसार कहीं-कहीं विषमता करनी पड़ती है, जो अनिवार्य है; पर मनमें आत्मदृष्टि अथवा परमात्म-दृष्टिसे सबमें समता रखनी चाहिये। विषमता इस रूपमें हो तो वह गुण है—जैसे अपने तथा अपनी सन्तानके हिस्सेमें कम परिमाणमें, कम संख्यामें और अपेक्षाकृत घटिया चीज ली जाय और अपने देवर-ननद एवं जेठानी-देवरानी तथा उनकी सन्तानके हिस्सेमें अधिक परिमाण, अधिक संख्यामें और अपेक्षाकृत बढ़िया चीजें प्रसन्नतापूर्वक दी जायँ।

सहिष्णुता—दुःख, कष्ट और प्रतिकूलताके सहन करनेका नाम 'सहिष्णुता' है। यह नारी-जातिका स्वाभाविक गुण है। नारी पुरुषकी अपेक्षा बहुत अधिक सहती है और सहनेकी शक्ति रखती है।

साधारणतः सहिष्णुता गुणकी तुलना वृक्षोंके साथ की जाती है। ***'तरोरिव सहिष्णुता।'*** लोग पत्थर मारते हैं तो फलका वृक्ष सुन्दर सुपक्व मधुर फल देता है। लोग काटकर जलाते हैं तो वह स्वयं जलकर उनका यज्ञकार्य सम्पादन करता है, भोजन पकाता है और शीतसे ठिठुरते हुए शरीरमें गरमी पहुँचाकर जीवनदान देता है। फलवान् वृक्ष बनता भी है अनेकों आँधी, पानी, झाड़-बिजली आदि बाधाविपत्तियोंको झेलकर। यदि किसी नारीको प्रतिकूल भावोंके पति और सास प्राप्त हुए हों तो उसे सहिष्णु बनकर प्रेमके द्वारा उनको सन्मार्गपर लाना चाहिये। सहना, कलह न करके प्रेम करना, प्रतिवाद न करके सेवा करना—ऐसा अमोघ मन्त्र है कि इससे शीघ्र ही अशान्तिसे भरा उजड़ता हुआ घर पुनः बस जाता है और उसमें शान्ति तथा सुखकी लहरें उछलने लगती हैं।

सुव्यवस्था तथा सफाई—घरकी वस्तुएँ, आवश्यक सामग्री तथा कार्योंको सुशृंखलाबद्ध रखनेका नाम 'सुव्यवस्था' है। नारी घरकी लक्ष्मी है, घरके सौन्दर्य एवं ऐश्वर्यकी देवी है। सुव्यवस्थाके बिना घरमें लक्ष्मीका स्वरूप बिगड़ जाता है। इधर-उधर बेतरतीब बिखरी चीजें, कूड़े-कर्कटसे भरा आँगन, मकड़ीके जालोंसे छायी हुई दीवारें , कपड़े तथा बरतन आदिका मैलापन, खोजनेपर घण्टोंतक जरूरी चीजोंका नहीं मिलना, आवश्यकता होनेपर इधर-उधर दौड़-धूप करना, झुँझलाना और दूसरोंपर दोषारोपण करना, हिसाब-किताबका पता नहीं—ये सब अव्यवस्थाके रूप हैं। इनसे घर बरबाद होता है और तकलीफ तो कभी मिटती ही नहीं। थोड़ी-सी सावधानी रखके नियत स्थानपर प्रत्येक वस्तु सँभालकर रखी जाय, घर-दीवारोंको झाड़-बुहार लिया जाय और कपड़े-बरतन आदिको धो-माँजकर साफ रखा जाय तो सहज ही सुव्यवस्था हो सकती है। आवश्यकता होते ही चीज मिल जाती है। न समय व्यर्थ जाता है, न झुँझलाहट और किसीपर दोष लगानेकी नौबत आती

है। गन्दगी तथा कूड़ा-कर्कट न रहनेसे रोग तथा रोगके कीटाणु भी नहीं पैदा होते और व्यर्थकी सारी तकलीफें भी मिट जाती हैं।

श्रमशीलता—नारी घरमें रहती है, उसके स्वास्थ्यके लिये घरके काम ही सुन्दर व्यायाम हैं। जो नारी शारीरिक परिश्रम करती है, आलस्य तो उसके पास फटकता ही नहीं, रोग तथा बुढ़ापा भी उससे दूर-दूर ही रहते हैं। खाया हुआ भोजन हजम होता है। रक्तमें शक्ति तथा शुद्धि होती है। मन प्रफुल्लित रहता है। आजकल कुछ नारियाँ कहती हैं कि 'घरमें पैसा है; नौकर-नौकरानियाँ काम कर सकती हैं; फिर हम मेहनत क्यों करें।' पर यह बड़ी भूल है। नौकर-नौकरानियाँ काम कर देंगी; पर आपका खाया हुआ वे कैसे पचा देंगी। आपको स्वस्थ तथा शुद्ध रक्त वे कहाँसे देंगी। फिर बिना सँभालके नौकरोंसे कराये हुए काम भी तो ठीक नहीं होते। चोरी शुरू होती है। खर्च बढ़ता है और सबसे बड़ी हानि यह होती है कि घरमें आलस्य और रोगोंकी उत्पत्ति होती है। नौकर रहनेपर भी घरकी सफाई, आटा पीसना, चर्खा कातना, दही बिलोना, रसोई बनाना आदि काम तो हाथसे करनेमें ही सब तरहका लाभ है। भोजनमें भावके अनुसार अमृत भी हो सकता है और विष भी। माता तथा पत्नीकी बनायी रसोईमें अमृत होगा। खर्च भी बचेगा और विशुद्धि भी रहेगी। चक्की चलानेवाली स्त्रियोंको रज-सम्बन्धी रोग बहुत कम होते हैं। खेतोंमें काम करनेवाली नारियाँ बहुत कम बीमार होती हैं। अतएव नारीको शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिये।

निरभिमानता—रूप, धन, पुत्र, विद्या, बुद्धि तथा अधिकार आदिका गर्व न करना और सबके साथ नम्रता तथा सौजन्यपूर्ण व्यवहार करना 'निरभिमानता' है। स्त्रियोंमें गर्व बहुत जल्दी आता है और वे उसके आवेशमें गाँव और पड़ोसियोंका तथा नौकर-चाकरोंका ही नहीं, आत्मीय स्वजनोंका—यहाँतक कि सास-ससुर, जेठ-जेठानी आदि

गुरुजनोंका तथा कन्या-जामाता, पुत्र-पुत्रवधू आदिका भी तिरस्कार कर बैठती हैं, जिसके परिणामस्वरूप जीवनभरके लिये क्लेश पैदा हो जाते हैं। इसलिये सदा-सर्वदा सावधानीसे निरभिमानताका अत्यन्त विनम्र बर्ताव करना चाहिये। नम्र व्यवहारसे वैरी भी मित्र हो जाते हैं और कठोर व्यवहारसे मित्र भी शत्रु बन जाते हैं।

मितव्ययिता—सीमित खर्च करनेको 'मितव्ययिता' कहते हैं। मितव्ययिता केवल रुपये-पैसोंकी ही नहीं, घरकी वस्तुमात्रको ही समझदारीके साथ यथासम्भव कम खर्च करना चाहिये। कम आमदनीवाले गृहस्थको सम्भव हो तो आमदनीका तीसरा या चौथा हिस्सा आकस्मिक विपदापद्के समय खर्चके तथा बच्चोंके ब्याह-शादीके लिये जमा रखना चाहिये। जिनके पास बहुत पैसा तथा बहुत आमदनी है, उनको भी व्यर्थ व्यय नहीं करना चाहिये। इससे आदत बिगड़ती है, कभी पैसा न रहा तो स्थिति बहुत दुःखदायिनी होती है एवं व्यर्थ अधिक व्यय हो जानेके कारण धर्म तथा लोकसेवाके आवश्यक कार्यमें खर्चनेकी प्रवृत्ति घट जाती है, जो मनुष्यकी एक उच्च वृत्तिका नाश करनेवाली होनेके कारण सबसे बड़ी हानि है। स्त्रियोंमें फिजूलखर्चीका दोष प्रायः अधिक होता है। थोड़ी आमदनीवाले पति-पुत्र तो बेचारे तंग आ जाते हैं। घरमें सदा अशान्ति रहती है। नारियाँ यदि चाहें तो सहज ही मनका संयम करके कम खर्चकी आदत डालकर घरमें पति-पुत्रोंको सुख-शान्ति, आदतका सुधार तथा धर्म-पुण्यके लिये सुअवसर प्रदान कर सकती हैं।

उदारता—जिस प्रकार फिजूलखर्ची दोष है, उसी प्रकार पैसा होनेपर भी आवश्यक धार्मिक तथा सामाजिक कार्योंमें कंजूसी करना भी दोष है। बच्चोंकी बीमारीमें, उनके लिये दूध-फल आदिमें, श्राद्धादि धार्मिक कृत्योंमें, भगवान्की पूजा तथा पर्वोत्सवोंमें, गो-ब्राह्मण तथा देवसेवामें, बेटी-बहिनको देनेमें, बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षामें,

सास-ससुरकी सेवामें, परिवारके अन्य लोगोंकी सेवामें, विधवा तथा आश्रितोंके सत्कारपूर्ण भरण-पोषणमें, गरीबोंकी सेवामें तथा अपने स्वास्थ्यके लिये भोजन-औषध आदिमें जो नारी कंजूसी करती है और पैसा बटोरकर रखना चाहती है, उसका अपना नैतिक पतन तो होता ही है, उसके आदर्शसे उसके बाल-बच्चे भी बुरी शिक्षा ग्रहण करके पतित हो जाते हैं। अतएव आवश्यक कामोंमें कंजूसी न करके उदारतासे बरते। किसीकी सहायता-सेवा करके न अभिमान करे, न अहसान करे और न उसका बदला चाहे।

परदुःख-कातरता—दूसरेको दुःखमें पड़े देखकर बिना किसी भेदभाव या पक्षपातके उसका दुःख दूर करनेके लिये मनमें जो तीव्र भावना उत्पन्न होती है, उसका नाम 'परदुःख-कातरता' है। इसीको दया भी कहते हैं। नारीमें इस गुणका विशेष विकास हो और दुःखी प्राणियोंका दुःख हरण करनेके लिये वह भी अन्नपूर्णा बन जाय, यह बहुत ही आवश्यक है।

सेवा-शुश्रूषा—१. पतिकी सेवा, २. सास-ससुरकी सेवा, ३. बच्चोंकी सेवा, ४. अतिथिसेवा, ५. देवसेवा, ६. देशसेवा और ७. रोगियोंकी तथा पीड़ितोंकी सेवा—ये सभी सेवाके अंग हैं। नारीमें सेवाभाव स्वाभाविक होता है; पर उसे सेवा करनी चाहिये केवल पतिसेवाके लिये या परमपति परमात्मा प्रभुकी सेवाके लिये ही। सेवामें उसका अन्य उद्देश्य नहीं होना चाहिये। सेवा वशीकरण-मन्त्र है। सेवासे सभीको वशमें किया जा सकता है। असलमें जीवन सेवामय ही होना चाहिये। जैसे धनमें ईर्ष्या होती है, वैसे ही शुद्ध सेवामें भी सबसे आगे बढ़नेकी ईर्ष्या तथा सेवाका अधिक-से-अधिक सुअवसर प्राप्त करनेकी तीव्र अभिलाषा एवं भगवान्से प्रार्थना होनी चाहिये। सेवा शुद्ध सेवाके भावसे ही होनी चाहिये। न तो सेवामें किसीका उपकार करनेका अभिमान होना चाहिये, न सेवाका विज्ञापन करनेकी कल्पना और न सेवाके बदलेमें कुछ

पानेकी आकांक्षा ही। सेवा करनेपर जो गर्वहीन सहज आत्मसन्तोष होता है, वही परम धन है। सेवाके संक्षिप्त प्रकार ये हैं—

(१) तन-मन—सर्वस्व अर्पण करके सब प्रकारसे पतिको सुख पहुँचाने एवं उन्हें प्रसन्न करनेके लिये तथा उनका सदा-सर्वदा सर्वत्र कल्याण हो, इस कामनासे उनकी हर तरहकी सेवा करे।

(२) सास-ससुरकी सेवा करनेका सुअवसर मिला है, इसमें अपना सौभाग्य मानकर और वे सेवा स्वीकार करते हैं, इसलिये उनका उपकार मानकर—मधुर, आदरयुक्त वाणीसे उनकी रुचि तथा पसन्दके अनुसार भोजन, वस्त्र, आज्ञापालन, उनके इच्छानुसार धर्म-कार्य-सम्पादन या दान आदिके द्वारा तथा सासके और वृद्ध हों तो ससुरके भी चरण दबाकर, रोगादिकी अवस्थामें उनकी हर तरहकी सेवा करके, उनके मतानुसार उनकी कन्याओंको, जो ननद लगती हैं, सम्मानपूर्वक देकर बल्कि वे कम कहें और अपनी हैसियत अधिक देनेकी हो तो प्रार्थना करके—उनसे आज्ञा प्राप्त करके उन्हें अधिक देना चाहिये। इसमें वे प्रसन्न ही होंगे। उन्हें रामायण, भागवत, गीता, भगवन्नाम-कीर्तनादि सुनाकर सुख पहुँचावे।

(३) बच्चोंका स्वास्थ्य सुधरे, वे तन-मनसे विकसित हों, उनकी बुद्धिका विकास हो, उनके आचरणोंमें स्फूर्तियुक्त सात्त्विक गुणोंका प्रकाश हो, वे कुल, जाति, देश तथा धर्मका गौरव बढ़ानेवाले सुशिक्षित तथा सदाचारी हों एवं त्यागकी पवित्र भावनासे युक्त ईश्वरभक्त हों—इस प्रकारसे उनका लालन-पालन, शिक्षण-संवर्धन आदि करे।

(४) अतिथिको भगवान् समझकर उनकी यथाशक्ति तथा यथाविधि निर्दोष तथा निष्काम सेवा करे।

(५) घरमें इष्टदेवकी धातु अथवा पाषाणकी या चित्रमय मूर्ति रखकर श्रद्धा तथा विधिपूर्वक भक्तिके साथ उसकी नित्य विविध उपचारोंसे पूजा करे।

(६) देशकी सेवाके लिये उत्तम-से-उत्तम सन्तान निर्माण करे और उसे अपने-अपने कर्तव्यके द्वारा देशके रूपमें भगवान्‌की सेवाका सक्रिय पाठ सिखावे। देशकी नारियोंमें अपने आदर्श सदाचार, पातिव्रत्य तथा धर्मभावनाके द्वारा सत्-शिक्षा और सद्भावनाका विस्तार करे।

(७) घरमें तथा अवसर आनेपर आवश्यकता और अपनी सुविधाके अनुसार रोगियों और पीड़ितोंकी तन-मन-वचन तथा धनसे निर्दोष और निष्काम सेवा आदर तथा सत्कारपूर्वक करे। कभी सेवाका अभिमान न करे, न अहसान जनावे।

संयुक्त परिवार—जहाँतक हो, सहकर तथा उदारताके साथ विनम्र व्यवहार करके घरको संयुक्त रखे। भाइयोंको तथा परिवारको पृथक्-पृथक् न होने दे। पता नहीं, किसके भाग्यसे सुख तथा ऐश्वर्य मिलता है। कभी ऐसा न समझे कि मेरा पति या पुत्र कमाता है और दूसरे सब मुफ्तमें खाते हैं। सबका हिस्सा है और सब अपने-अपने भाग्यका ही खाते हैं। तुम जो इनमें निमित्त बन रहे हो, यह तुम्हारा सौभाग्य है। नारियोंपर यह एक कलंक है कि उनके आते ही सहोदर भाइयोंमें विद्वेष हो जाता है, घरमें फूट पड़ जाती है और फलतः घर बर्बाद हो जाता है। इस कलंकको धोना चाहिये और पति-पुत्रोंको समझाकर यथासाध्य संयुक्त परिवार तथा संयुक्त भोजन रहे, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। सेवाभाव तथा प्रेम जितना ही अधिक होगा, उतना ही त्याग अधिक होगा। प्रेमकी भित्ति त्याग है। जहाँ प्रेम होगा, वहाँ पृथक्-पृथक् होनेका प्रश्न ही नहीं उठेगा।

भक्ति—जीवनके प्रत्येक कर्मके द्वारा भगवान्‌की सेवा करना, मनके प्रत्येक संकल्पके द्वारा प्रभुका चिन्तन, प्रभुके प्रति आत्मसमर्पण, प्रभुको प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा—ये भक्तिके मुख्य रूप हैं। इसके विभिन्न विधान हैं। उनको जानकर यथासाध्य प्रतिदिन नियमितरूपसे भगवान्‌के नामका जप, चिन्तन, उनकी लीला-कथाओंका वाचन-

श्रवण-मनन, उनके दिव्य स्वरूपका ध्यान, उनकी आज्ञाओंका पालन एवं उनकी वाणी श्रीमद्भगवद्गीता तथा उनके पवित्र चरित्र श्रीरामायण तथा भागवत आदिका अध्ययन करना चाहिये।

सादगी—तनमें, मनमें तथा वचनमें कहीं भी दिखावट, दम्भ, बाहरी शृंगार, शौकीनी, कुटिलता नहीं हो। भड़कीले, चमकीले तथा विदेशी ढंगके वस्त्रादि, गहने तथा सेंट वगैरह, जिनसे लोगोंका आकर्षण होता हो, न हों। सभी वस्तुओंमें सादगी और सिधाई हो।

सतीत्व—यह नारीका सर्वोत्तम और अनिवार्य आवश्यक गुण है। इसके बिना नारी प्राणरहित शवकी भाँति दोषमयी है।

१८ नारीके दूषण

कलह—बात-बातमें लड़ने-झगड़नेको तैयार रहना, लड़े बिना चैन न पड़ना, घरमें तथा अड़ोस-पड़ोसमें किसीसे भी खुश न रहना कलहका स्वरूप है। यह बहुत बड़ा दोष है। जो स्त्री कलह करके अपने दोष धोना तथा अपनी प्रधानता स्थापन करना चाहती है, उसको परिणाममें दोष और घृणा ही मिलते हैं। कलह करनेवाली स्त्रीसे सभी घृणा करते हैं। यहाँतक कि कई बार वह जिन पति-पुत्रोंके लिये दूसरोंके साथ कलह करती है, वे पति-पुत्र भी उससे अप्रसन्न होकर उसका विरोध करते हैं। कलहसे अपने सुख-शान्तिका तो नाश होता ही है, सारे परिवारमें महाभारत मच जाता है। सास-ससुर, पति-पुत्र-कन्या और नौकर-नौकरानियाँ सबके मनमें उद्वेग होता है। घरके कामोंमें विशृंखलता आ जाती है। पतिका अपने व्यापार या दफ्तरके कामोंमें मन नहीं लगता। रोगीको उचित दवा-पथ्य नहीं मिलता। जिस कुटुम्बमें कलहकारिणी कर्कशा स्त्री होती है, उसके दुर्भाग्यका क्या ठिकाना। ताने मारना, बढ़ा-चढ़ाकर दोषारोपण करना, दूसरोंको गाली देना और स्वयं खाना कलहकारिणीके स्वभावमें आ जाता है। अतएव उसके मुँहसे आवेशमें ऐसी-ऐसी गन्दी बातें निकल जाती हैं कि जिन्हें सुनकर लज्जा आती है। जबानका घाव अमिट होता है। क्रोधावेशमें नारी अपने घर-परिवारके लोगोंको ऐसे शब्द कह बैठती है कि जन्मसे चला आता हुआ प्रेम सहसा नष्ट हो जाता है तथा जीवनभरके लिये परस्पर वैर बँध जाता है। और तो क्या क्रोधमें भरकर नारी ऐसी क्रिया कर बैठती है कि वह अपने स्वामीकी नजरसे भी गिर जाती है और फिर उम्रभर क्लेश सहती है। स्त्री जहाँ एक बार पतिकी

आँखोंसे गिरी कि फिर सभीकी आँखोंसे गिर जाती है; अतः नारीको इस जघन्य दोषसे अवश्य बचे रहना चाहिये।

निन्दा-हिंसा-द्वेष—जहाँ चार स्त्रियाँ इकट्ठी हुईं कि परचर्चा शुरू हुई । परचर्चामें यदि पराये गुणोंकी आलोचना हो, तब तो कोई हानि नहीं है; परन्तु ऐसा होता नहीं। आजकल मानव-स्वभावमें यह एक कमजोरी आ गयी है कि वह दूसरोंके गुण नहीं देखता, दोष ही देखता है। कहीं-कहीं तो दोष देखते-देखते दृष्टि ऐसी दोषमयी बन जाती है कि फिर उसे सबमें सर्वत्र सदा दोष ही दीखते हैं और दोष दीखनेपर तो निन्दा ही होगी, स्तुति कैसे होगी। निन्दासे दोषोंका चिन्तन होता है; जिनकी निन्दा होती है, उनसे द्वेष बढ़ता है। द्वेषका परिणाम हिंसा है। अतएव परनिन्दासे बचना चाहिये। उचित तो यह है कि परचर्चा ही न हो या तो भगवच्चर्चा हो या सत्-चर्चा हो। यदि परचर्चा हो तो वह गुणोंकी हो, दोषोंकी नहीं। इससे सभीको शान्ति मिलेगी तथा बच्चे भी इसी आदर्शमें ढलेंगे। निन्दाकी भाँति चुगली भी दोष है। उससे भी बचना चाहिये। चुगली करके नारियाँ घरमें परस्पर झगड़ा कराने और घरके बर्बाद होनेमें कारण बनती हैं, जो सर्वथा अनुचित तथा हानिकारी है।

ईर्ष्या—दूसरोंकी उन्नति देखकर, दूसरोंको धन-पुत्र आदिसे सुखी देखकर जलना ईर्ष्या या डाह है। यह बहुत बुरा दोष है और स्त्रियोंमें प्रायः होता है। इससे बहुत-से अनर्थोंकी उत्पत्ति होती है। अतएव इससे भी बचना आवश्यक है।

भेद—नारियोंमें प्रायः दोष होता है कि वे घरके लोगों और नौकरोंके खान-पानमें तो भेद रखती ही हैं; अपने पति-पुत्रों तथा घरके सास-ससुर, जेठ, देवर, ननद आदिमें तथा उनकी सन्तानमें भी खान-पान, वस्त्रादि पदार्थोंमें तथा व्यवहारमें भेद रखती हैं। बम्बईमें एक संभ्रान्त घरकी बहूने पतिके लिये दही छिपाकर रख

लिया था और विधुर ससुरके माँगनेपर वह झूठ बोल गयी थी। परिणाम यह हुआ कि ससुरने बुढ़ौतीमें दूसरा विवाह कर लिया और आगे चलकर उस पुत्रवधू और पुत्रको ससुरके धनमेंसे कुछ भी नहीं मिला। अपने ही पेटके लड़के और लड़कीमें भी स्त्रियाँ भेद करते देखी जाती हैं। लड़केको बढ़िया भोजन-वस्त्र देती हैं, लड़कीको घटिया। लड़का अपनी बहिनको मारता है तो माँ हँसती है और कन्याको सहन करनेका उपदेश देती है एवं कन्या कहीं भाईको जरा डाँट देती है तो माँ उसे मारने दौड़ती है। पर आश्चर्य यह कि यह भेद तभीतक रहता है जबतक कन्याका विवाह नहीं हो जाता। विवाह होनेके बाद माता अपनी कन्यासे विशेष प्यार करती है और पुत्रवधू तथा पुत्रसे कम। खास करके, पुत्रवधूके प्रति दुर्व्यवहार और कन्याके प्रति सद्व्यवहार करती है। इस भेदसे भी घर फूटता है। नारियोंको इस व्यवहार-भेदका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

विलासिता-शौकीनी—यह दोष आजकल बहुत ज्यादा बढ़ रहा है। भ्रष्ट तेल, साबुन, पामेड, पाउडर, स्नो, एसेंस, बढ़िया-से-बढ़िया विदेशी ढंगके कपड़े-गहने आदिकी इतनी भरमार हो गयी है कि इसके मारे गृहस्थीका अन्य खर्च चलना कठिन हो गया है। पत्नियोंकी विलासिताकी माँगने पतियोंको तंग कर दिया है। इसीको लेकर रोज घरोंमें आपसमें झगड़े हो जाते हैं। यह भारतीय नारियोंके लिये कलंक है। शृंगार होता है पतिके लिये, न कि दुनियाको दिखानेके लिये। आजकी फैशन तथा विलासिताने स्त्रियोंको बहुत नीचे गिरा दिया है। घण्टों वेशभूषामें खर्च कर देना, खर्चको अत्यधिक बढ़ा लेना, बुरी आदत डाल लेना—जो आगे चलकर दोहरा दुःख देती है—और घरके काम-काजमें हाथ न लगाना, ये बहुत बड़े दोष हैं, जो शौकीनीके कारण उत्पन्न होते हैं। स्वास्थ्य तथा सफाईके लिये आवश्यक उपकरण रखनेमें आपत्ति नहीं और न साफ-सुथरे रहनेमें दोष है। बल्कि साफ-सुथरा रहना तो आवश्यक है। दोष तो शौकीनीकी भावनामें है जो त्याज्य है।

फिजूल खर्च—शौकीनीकी भावनाके साथ ही दूसरी स्त्रियोंकी देखा-देखी तथा मूर्खतासे एवं संग्रह करनेकी आदतसे भी यह दोष बढ़ जाता है। वही गृहस्थ सुखी रहता है, जो आमदनीसे कम खर्च लगाता है। चतुर और सुघड़ बुद्धिमती स्त्रियाँ एक पैसा भी व्यर्थ ख़र्च नहीं करतीं। लोगोंकी देखा-देखी अनावश्यक सामान नहीं खरीदतीं, चौके तथा वस्त्राभूषणोंमें सादगीसे काम लेती हैं। बच्चोंको नहला-धुलाकर साफ-सादे कपड़े पहनाकर और उनके मनमें उस सादगी तथा सफाईमें ही गौरव-बुद्धि उपजाकर सुन्दर-सुडौल रखती हैं, जिससे न तो उनकी आदत बिगड़ती और न खर्च ही अधिक होता है। खर्चकी तो कोई सीमा ही नहीं है। अपव्यय करनेपर महीनेमें हजारों रुपये भी काफी नहीं होते और सोच-समझकर खर्च करनेसे इस महँगीमें भी सहज ही अपनी आमदनीके अन्दर ही चल जाता है। स्त्रियोंको हिसाब रखना सीखना चाहिये और आमदनीमेंसे कुछ अवश्य बचाकर रखेंगी, ऐसा निश्चय करके ही खर्च करना चाहिये। ***'तेते पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर।'***

गर्व-अभिमान—कोई-कोई स्त्री अपने पति-पुत्रके धन या पद-गौरवका अथवा गहने-कपड़ोंका गर्व—अभिमान वाणी और व्यवहारमें लाकर इतनी रूखी बन जाती है कि घरके लोगोंतकको उससे बात करते डर लगता है और अपमान-बोध होता है। ऐसी स्त्री बिना मतलब सबको अपना द्वेषी बना लेती है। अतएव किसी भी वस्तुका गर्व कभी नहीं करना चाहिये।

दिखावा—नारियोंके स्वभावमें प्रायः ऐसा देखा जाता है कि वे यही समझती हैं कि किसी भी चीजको दिखाकर करना चाहिये। कन्या या ननदको कुछ देंगी तो उसको पहले सजाकर लोगोंको दिखलायेंगी, तब देंगी। कहीं-कहीं तो दिखाया जाता है ज्यादा और दिया जाता है कम, जिससे कन्या आदिको दुःख भी होता है। इसी प्रकार किसी परिवारके या बाहरके या अभावग्रस्त पुरुष या स्त्रीकी कभी कोई सेवा

की जाती है तो ऐसा सोचा जाता है कि हमारी सेवाका पता इसको जरूर लग जाना चाहिये। सेवा करें और किसीको कुछ पता भी न चले तो मानो सेवा ही नहीं हुई। सेवा करके जताना, अहसान करना और बदलेमें कृतज्ञता तथा खुशामद प्राप्त करना ही मानो सेवाकी सफलताका निशान समझा जाता है। यह बड़ा दोष है । देना वही सात्त्विक है, जिसको कोई जाने ही नहीं। लेनेवाला भी न जाने तो और भी श्रेष्ठ।

विषाद—कई स्त्रियोंमें यह देखा गया है कि वे दिन-रात विषादमें डूबी रहती हैं। उनके चेहरेपर कभी हँसी नहीं। दुःख-कष्टमें तो ऐसा होना स्वाभाविक है, पर सब तरहके सुख-स्वाच्छन्द्य होनेपर भी स्वभावसे ही हमेशा विषादभरी रहना और किसी बातके पूछते ही झुँझला उठना तो बड़ा भारी दोष है। इसको छोड़कर सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये। प्रसन्नता सात्त्विक भाव है। प्रसन्न मनुष्य सबको प्रसन्नताका दान करता है। विषादी और क्रोधी तो विषाद और क्रोध ही बाँटते हैं।

हँसी-मजाक—कई नारियोंमें हँसी-मजाकका दोष होता है। कई तो देवर या ननदोई आदिके साथ गन्दी दिल्लगी भी कर बैठती हैं। परिवारके तथा घरमें आने-जानेवाले पुरुषों और स्त्रियोंके साथ भी दिल्लगी करती रहती हैं। हँसमुख रहना गुण है। निर्दोष और सीमित विनोद भी बुरा नहीं। परंतु जहाँ हँसी-मजाककी आदत हो जाती है और उसमें ताना, व्यंग्य, कटुता और अश्लीलता आ जाती है वहाँ उससे बड़ी हानि होती है। स्त्रीको सदा ही मर्यादामें बोलनेवाली और प्रसन्नमुखी होनेपर भी गम्भीर होना चाहिये।

वाचालता—बहुत बोलना भी दोष है। इसमें समय नष्ट होता है, व्यर्थ चर्चामें असत्य, पर-निन्दा, चुगली आदि भी हो जाते हैं। जबानकी शक्ति नष्ट होती है और घरके कामोंमें नुकसान होता है। गप लड़ानेवाली स्त्रियोंके घर उजड़ा करते हैं। अतएव नारीको सोच-

समझकर सदा हितभरी मीठी वाणी बोलनी चाहिये और वह भी बहुत ही कम। ज्यादा बोलनेवालीको तो भजन करनेकी फुरसत ही नहीं मिलती, जो बहुत बड़ी हानि है।

स्वास्थ्यकी लापरवाही तथा कुपथ्य—स्त्रियोंमें यह दोष प्रायः देखा जाता है कि वे स्वास्थ्यकी ओरसे लापरवाह रहती हैं। रोगको दबाती तथा छिपाती हैं और कुपथ्य भी करती रहती हैं। जिन बहुओंको ससुरालमें सासके डरसे रोग छिपाना पड़ता है और रोगकी यन्त्रणा भोगते हुए भी जबरदस्ती बलवान् मजदूरकी तरह दिनभर खटना पड़ता है, उनकी बात दूसरी है। पर जो प्रमादवश या दवा लेने और पथ्यसे रहनेके डरसे रोगको छिपाती है, वह तो अपने तथा घरके साथ भी अन्याय करती है, साथ ही स्त्रियाँ प्रायः स्वास्थ्य-रक्षाके नियमोंको भी नहीं जानतीं और कुछ जानती हैं तो उनकी परवा नहीं करतीं। ऐसा नहीं करना चाहिये।

मोह—कई स्त्रियाँ मोहवश बच्चोंको अपवित्र वस्तुएँ खिलातीं, अपवित्र रखतीं, जान-बूझकर कुपथ्य-सेवन करातीं, उन्हें झूठ बोलने, नौकरोंके साथ बुरा बर्ताव करने तथा गाली देने और मारनेकी बुरी आदत सिखातीं, उनकी चोरी-चमारीकी क्रियाको सहकर उनका वैसा स्वभाव बनातीं और पढ़ाने-लिखानेमें प्रमाद करती हैं; साथ ही उन्हें कुछ भी काम न करने देकर और दिन-रात खेल-तमाशों तथा सिनेमा वगैरहमें ले जाकर फिजूल खर्च, आलसी , सदाचाररहित, गन्दा, रोगी और बुरे स्वभावका बनाकर उनका भविष्य बिगाड़ती हैं एवं परिणाममें उनको दुःखी बनाकर आप भी दुःखी होती हैं। इस दोषसे सन्ततिका शील और सदाचार नष्ट हो जाता है और बच्चे कुलदीपकसे कुलनाशक बन जाते हैं। माताओंको व्यर्थके मोहसे बचकर बच्चोंको—पुत्र तथा कन्या दोनोंको संयमी, धार्मिक, सदाचारी और सद्गुणसम्पन्न बनाना चाहिये, जिससे वे सुखी हों तथा अपने आचरणोंसे कुलका सिर ऊँचा कर सकें।

कुसंग—स्त्रियोंको भूलकर भी परनिन्दा करनेवाली, खुशामद करनेवाली, झाड़-फूँक और जादू-टोना बतलानेवाली, पर-पुरुषोंकी प्रशंसा करनेवाली, विलासिनी, अधिक खर्च करनेवाली, इधर-उधर भटकनेवाली, कलहकारिणी और कुलटा स्त्रियोंका संग नहीं करना चाहिये। इनका संग कुसंग है तथा सब प्रकारसे पतनका कारण है।

आलस्य—आलस्य, प्रमाद और निद्रा तमोगुणके स्वरूप हैं। तमोगुणसे चित्तमें मलिनता आती है और जीवनमें प्रगतिका मार्ग रुक जाता है। अतएव स्त्रियोंको सदा सत्कर्मोंमें लगे रहना चाहिये और आलस्य-प्रमादादिसे बचना चाहिये।

व्यभिचार—स्त्रियोंके लिये यह सबसे बड़ा दोष है। शरीरसे तो क्या, वाणी और मनसे भी पर-पुरुषका सेवन करना महापाप है। सतीत्वका नाशक है। लोकमें निन्दा करानेवाला और परलोकको बिगाड़नेवाला है। जो नारी ऐसा करती है, उसका मुँह देखना पाप है। उसे लाखों-करोड़ों वर्षोंतक नरकोंकी भीषण यन्त्रणा भोगनी पड़ती है और तदनन्तर जहाँ जन्म होता है, वहाँ बार-बार भाँति-भाँतिके भीषण दुःखों-कष्टोंका भार वहन करके जीवनभर रोना पड़ता है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी । दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
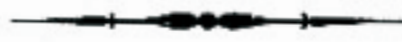
१९ लज्जा नारीका भूषण है

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टा एव पार्थिवाः।
सलज्जा गणिका नष्टा लज्जाहीनाः कुलस्त्रियः॥

'सन्तोषहीन ब्राह्मण, सन्तोषी राजा, लजवन्ती वेश्या और लज्जाहीन कुलवधूका नाश निश्चित है।'

जिस प्रकार स्त्रियोंका जेलकी काल-कोठरीकी तरह बन्द रहना उनके लिये हानिकर है, उसी प्रकार—वरं उससे भी कहीं बढ़कर हानिकर उनका स्त्रियोचित लज्जाको छोड़कर पुरुषोंके साथ निरंकुशरूपसे घूमना-फिरना, पार्टियोंमें शामिल होना, पर-पुरुषोंसे निःसंकोच मिलना, सिनेमा तथा गन्दे खेल-तमाशोंमें जाना, सिनेमामें नटी बनना, पर-पुरुषोंके साथ खान-पान तथा नृत्य-गीतादि करना आदि है। नारीके पास सबसे मूल्यवान् तथा आदरणीय सम्पत्ति है उसका सतीत्व। सतीत्वकी रक्षा ही उसके जीवनका सर्वोच्च ध्येय है। इसीलिये वह बाहर न घूमकर घरकी रानी बनी घरमें रहती है। इसी कारणसे उसके लिये अवरोध-प्रथाका विधान है। जो लोग स्त्री-जातिपर सहानुभूति एवं दया करनेके भावसे उनको घरसे निकालकर बाहर खड़ी करना अपना कर्तव्य समझते हैं, वे या तो नीयत शुद्ध होनेपर भी भ्रममें हैं, उन्होंने इसके तत्त्वको समझा नहीं है या वे अपनी उच्छृंखल वासनाके अनुसार ही दया तथा सहानुभूतिके नामपर यह पाप कर रहे हैं।

लज्जाशीलतासे सतीत्व और पातिव्रत्यका पोषण और संरक्षण होता है। इसीलिये लज्जाको स्त्रीका भूषण* बतलाया गया है। पुरुषमें पुरुष-भाव तथा नारीमें प्रकृति (देवी) भावकी प्रधानता स्वाभाविक

---

* स्त्रीकी शोभा लज्जामें है, लज्जा उसका एक भूषण है। अपने स्वामी भगवान् राम और देवर लक्ष्मणके साथ देवी सीता वनमें जा रही हैं। वनरमणियाँ सीताजीसे पूछती हैं—

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

होती है। लज्जा देवी-भाव है। इसी नैसर्गिक कारणसे नारीमें लज्जा भी नैसर्गिक होती है। पुरुष-प्रकृतिके साथ नारी-प्रकृतिका यह भेद स्वभावसिद्ध है। यों तो मनुष्यमात्रमें उसके विवेकसम्पन्न प्राणी होनेके कारण पशु-प्राणीकी भाँति आहार, निद्रा और खास करके स्त्री-पुरुषोंकी काम-चेष्टा और मैथुनादिमें निर्लज्ज भाव नहीं होता, फिर मनुष्योंमें नारी तो विशेषरूपसे लज्जाशीला होती है। नारीकी शोभा इसीमें है। लज्जाका परित्याग करना नारीके लिये गुणगौरवकी बात नहीं; बल्कि इससे उसके गौरवकी, सतीत्वकी, मानस-स्वास्थ्यकी, देवी-भावकी तथा स्वाभाविक पवित्रताकी हानि होती है। इसीसे वेदोंमें भी नारीके लिये लज्जाका विधान मिलता है। ऋग्वेद ८। ४। २६ में है—'**यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव**'।

'वस्त्रद्वारा आवृत वधूकी भाँति जो यज्ञके द्वारा आवृत है,' इसमें नारीके लिये अपने अंगोंको ढके रखनेका स्पष्ट निर्देश है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य स्थलोंमें भी तथा रामायण, महाभारत एवं पुराणादि ग्रन्थोंमें इसके प्रचुर प्रमाण मिलते हैं। सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि सतियोंका जो घरोंसे बाहर निकलनेका इतिहास मिलता है, वह विशेष परिस्थितिकी बात है और ऐसी विशेष परिस्थितियोंमें हिन्दूशास्त्र भी बाहर निकलनेकी आज्ञा देते हैं।

सीताजी संकुचित होकर मुसकरा देती हैं और मधुर स्वरसे लक्ष्मणजीका परिचय देती हुई कहती हैं—

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥

और फिर—

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥

यह लज्जाका आदर्श है। वस्तुतः हिन्दुओंमें वैसे पर्दा है ही नहीं, यह तो शील-संकोचका एक सुन्दर निदर्शन है। लोग कहते हैं—'यह काहेका पर्दा, जो घरवालोंके—श्वशुर-जेठ आदिके सामने तो पर्दा करे और दूसरे लोगोंके सामने खुले मुँह रहे, पर इसीसे तो यह सिद्ध है कि यह वस्तुतः पर्दा नहीं है। यह तो बड़ोंके सत्कारके लिये एक शील-संकोचका पवित्र भाव है, जो होना ही चाहिये।

स्त्रियोंका गौरव लज्जाशीलतामें है, इसके विषयमें कुछ दूरदर्शी पाश्चात्य विद्वानोंके मत भी देखिये—

The reputation of a woman is as a crystal mirror shining and bright but liable to be sullied by every breath that comes near it. (Cervantes)

नारीकी कीर्ति स्फटिक दर्पणके सदृश है, जो अत्यन्त उज्ज्वल एवं चमकीला होनेपर भी दूसरेके एक श्वाससे भी मलिन होने लगता है।

(सरवांटेस)

She is not made to be the admiration of every body but the happiness of one (her husband). (Burke)

नारीकी सृष्टि, हरेकको मुग्ध करनेके लिये नहीं है वह तो एकमात्र (अपने पतिदेवता) को सुख देनेके लिये ही हुई है। (बर्क)

A woman smells sweetest, when she smells not at all.

(Plantus)

सबसे अधिक सुगन्धवाली स्त्री वही है, जिसकी गन्ध किसीको नहीं मिलती। (प्लेंटस)

Woman is a flower that breathes its perfume in the shade only.

(Lameneis)

नारी एक ऐसा पुष्प है जो छाया (घर) से ही अपनी सुगन्ध फैलाती है। (लेमेनिस)

The flower of sweetest smell is shy and lovely.

(Wordsworth)

श्रेष्ठ गन्धवाला पुष्प लजीला और चित्ताकर्षक होता है।

(वर्डसवर्थ)

जो वस्तु जितनी ही मूल्यवान् तथा प्रिय होती है वह उतनी ही अधिक सावधानी, सम्मान तथा संरक्षणके साथ रखी जाती है। धन-रत्नादि अमूल्य पदार्थोंको लोग इसीलिये छिपाकर रखते हैं।

हमारे यहाँ स्त्री पुरुषके विषय-विलासकी सामग्री नहीं है, वह सम्पूर्ण गार्हस्थ्य-धर्ममें सहधर्मिणी है। उसका शरीर कामका यन्त्र नहीं है वरं वह जगदम्बाके मंगल-विग्रहकी भाँति पूजनीया है। कन्यारूपमें तथा पति-पुत्रवती सतीके रूपमें वन्दनीया है। हिन्दू-शास्त्रानुसार गौरी या कुमारी-पूजनसे तथा सती-पूजनसे गृहस्थके दुःख-दारिद्र्य तथा शत्रु-संकटादिका नाश होता है और उसके धर्म, धन, आयु एवं बलकी वृद्धि होती है। इसलिये ससम्मान स्त्री-संरक्षणका विधान है। यह उसके साथ निर्दय व्यवहार नहीं, बल्कि उसके प्रति महान् सम्मानका निदर्शन है, साथ ही उसके सतीत्व-धर्मकी रक्षाका मंगलसाधन भी।

लज्जा छोड़कर पुरुषालयोंमें निःसंकोच घूमने-फिरनेसे पवित्र पातिव्रत्यमें क्षति पहुँचती है; क्योंकि इस स्थितिमें नारीको हजारों पुरुषोंकी विकृत दूषित दृष्टिका शिकार होना पड़ता है। श्रीदेवीभागवतमें एक कथा आती है कि शशिकला नामकी एक राजकन्याने स्वयंवरमें जानेसे इसीलिये इन्कार किया था कि वहाँ अनेक राजाओंकी काम-दृष्टि मुझपर पड़ेगी और इससे मेरे पातिव्रत्यपर आघात लगेगा। यह एक वैज्ञानिक रहस्य है कि जिस नारीको बहुत-से पुरुष कामदृष्टिसे देखते हैं और खास करके जिसके नेत्रोंपर दृष्टि पड़ती है एवं परस्पर नेत्र मिलते हैं, (इसीलिये लज्जाशीला स्त्रियाँ स्वाभाविक आँखोंको नीचेकी ओर रखती हैं) उसके पातिव्रत्यमें निश्चित हानि होती है। मनुष्यके मानसिक भावोंका विद्युत्-प्रवाह उसके शरीरसे निरन्तर निकलता रहता है और वह शब्द, स्पर्श एवं दृष्टिपात आदिके द्वारा (किसी अंशमें तो बिना किसी बाहरी साधनके अपने-आप ही) दूसरेके मन और साथ ही शरीरपर असर करता है। जहाँ उसके अनुकूल सजातीय भाव पहलेसे होते हैं, वहाँ विशेष असर होता है; पर जहाँ वैसा सजातीय भाव नहीं होता, वहाँ भी कुछ-न-कुछ प्रभाव तो पड़ता ही है और यदि बार-बार ऐसा होता रहे

तो क्रमशः भाव भी सजातीय बन जाते हैं। इससे यह सिद्ध है कि जिस स्त्रीके प्रति कामुक पुरुषोंकी कामशक्तिके द्वारा प्रेरित काम-भावपूर्ण कामदृष्टि बार-बार पड़ती रहेगी, यदि घनघोर पातिव्रत्यका प्रबल भाव उक्त कामदृष्टिके विकारी भावको नष्ट या परास्त करनेमें समर्थ नहीं होगा तो उस नारीके मनमें निश्चय ही चंचलता होगी, कामविकार उत्पन्न होगा और यदि उस विकारकी स्थितिमें अवसर प्राप्त हुआ तो पतन भी हो जायगा।

जिन स्त्रियोंने घर छोड़कर स्वच्छन्द पुरुषवर्गमें विचरण किया है, वे अन्यान्य बाहरी कार्योंमें चाहे कितनी ही सुख्याति प्राप्त क्यों न कर लें; पर यदि वे अन्तर्मुखी होकर अपने चरित्रपर दृष्टिपात करेंगी तो उनमेंसे अधिकांशको यह अनुभव होगा कि उनके मनमें बहुत बार विकार आया है और किसी-किसीका तो पतन भी हो गया है। बताइये, पतिव्रता स्त्रीके लिये यह कितनी बड़ी हानि है?

कुसंगके कारण कदाचित् पुरुषोंकी भाँति नारी भी कामदृष्टिसे पुरुषोंको देखने लगे, तब तो पुरुषके मनोभाव बहुत ही जल्दी बदलते हैं और दोनोंका पतन निश्चित-सा होता है। इस विज्ञानके अनुभवी पाश्चात्य विद्वान् स्टेनली रेड महोदय कहते हैं—

'It was discovered that certain subjects, more especially women, could produce changes in the aura by an effort of will causing rays to issue from the body or the colour of the aura to alter.' (Stanley Red)

"यह पाया गया है कि कई वस्तुएँ, खास करके स्त्रियाँ, अपनी इच्छाशक्तिसे पुरुषके 'औरा' को बदल देती हैं। पुरुषके शरीरसे उसके मनोभावोंकी जो विद्युत्-लहरियाँ निकलती हैं, उनके बदल जानेसे 'औरा' के वर्णमें भी परिवर्तन हो जाता है।"

मनुष्यके शरीरसे उनके मानसिक काम-क्रोधादि दुर्भावोंके तथा त्याग-क्षमादि सद्भावोंके विद्युत्-कण निरन्तर निकलते रहते हैं और

उसके शरीरके चारों ओर विविध रंगोंकी लहरियोंके रूपमें प्रकट होते हैं। सूक्ष्म-दृष्टिसे इनको देखा भी जा सकता है। इन्हींको 'औरा' (Aura) कहते हैं।

विभिन्न पुरुषोंकी दृष्टि स्त्रियोंपर न पड़े और उससे विकृत होनेपर स्त्रियोंकी दृष्टि पुरुषोंपर न पड़े—क्योंकि ऐसा होनेपर स्त्रियोंके पवित्र पातिव्रत्यका नाश होता है—इसीसे स्त्रियोंके लिये पुरुषालयोंमें, बाजारोंमें न घूमकर अलग घरमें रहनेका विधान है। यहाँतक कहा गया है कि आहार—निद्राके समयमें भी पुरुष स्त्रियोंको न देखें।* आजकल जो स्त्रियोंको साथ लेकर घूमने-फिरने तथा एक ही टेबलपर एक साथ खाने-पीनेकी प्रथा बढ़ रही है, यह वस्तुतः दोषयुक्त न दीखनेपर भी महान् दोष उत्पन्न करनेवाली है। ऐसा करनेवाले स्त्री-पुरुषोंको ईमानदारीके साथ अपनी मनोदशाका चित्र देखना चाहिये और भलीभाँति सोच-समझकर सबको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिसमें नारीके भूषण लज्जाकी रक्षा हो और उसका पातिव्रत्य धर्म अक्षुण्ण बना रहे।

---

* नाश्नीयाद् भार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् । (मनु० ४।४३)

स्त्री-पुरुष एक साथ बैठकर भोजन न करें और स्त्री भोजन करती हो तो उसे देखे भी नहीं।

२० स्त्रीके लिये पति ही गुरु है

यह सत्य है कि स्त्रियोंमें श्रद्धा-विश्वास अधिक है, धार्मिक भावना विशेष है और यह भी सत्य है कि आज भी धर्मको बहुत कुछ स्त्रियोंने बचा रखा है। पढ़े-लिखे बाबुओंको जहाँ न तो अवकाश है और न श्रद्धा है, वहाँ उनकी माता और पत्नियाँ, पुत्र और पतिकी मंगलकामनासे, परलोकके विश्वाससे और आत्मोद्धारके उद्देश्यसे धर्मका आचरण, भगवान्‌का भजन, दान-पुण्य, अतिथि-सत्कार, पूजा-पाठ और व्रतोपवास करती हैं, कथा-कीर्तन सुनती हैं, मन्दिरोंमें देवदर्शनको जाती हैं और तीर्थोंमें जाकर सन्त-महात्माओंके दर्शन-सत्संग करती हैं। यह सभी कुछ मंगलमय है और इससे लोक-परलोक—दोनोंमें अतुलित लाभ होता है, परंतु साथ ही यह भी सत्य है कि आजकल जैसे प्रायः सभी क्षेत्रोंमें दम्भ, धोखा, भ्रष्टाचार, अनाचार तथा ठगी चलती है, वैसे ही धर्म तथा अध्यात्मके क्षेत्रमें अनाचार और धोखाधड़ी बेशुमार चलती है। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि इस क्षेत्रमें आजकल अनाचारका विशेष प्राबल्य है। कई तीर्थोंमें तो खास तौरपर अनाचार तथा व्यभिचारके अड्डे बने हुए हैं। गुरुओंकी चारों ओर बाढ़ आ गयी है और लोगोंके मनोंमें, खास करके सरलहृदया स्त्रियोंके मनोंमें ये संस्कार बद्धमूल कर दिये गये हैं कि 'गुरुसे दीक्षा लिये (कानमें मन्त्र फुँकाये) बिना आत्मोद्धारकी कोई आशा ही नहीं है। गुरुका दर्जा भगवान्‌से भी ऊँचा है तथा गुरुको सर्वस्व अर्पण कर देना ही शिष्य या शिष्याका एकमात्र कर्तव्य है।' सिद्धान्त यह सत्य है कि परमार्थ-मार्गमें सद्‌गुरुकी आवश्यकता है और गुरुके प्रति समर्पणभाव भी अवश्य होना चाहिये परंतु आजकल न तो प्रायः वैसे सद्‌गुरु ही दृष्टिगोचर होते हैं और न विशुद्ध आत्म-समर्पणका भाव ही। फिर स्त्रियोंके

लिये तो एकमात्र पति ही परम गति, परम देवता और परम गुरु माने गये हैं। उन्हें अन्य गुरु करनेकी आवश्यकता नहीं है*। यह ठीक है कि देवदासीप्रथा जैसे आरम्भमें देवताके प्रति शुद्ध समर्पण-भावकी द्योतक थी, परंतु पीछेसे उसमें महान् पाप आ गया, उसी प्रकार गुरुकरण-प्रथाका मूल भी पवित्र था, परंतु आजकल तो इसका बहुत बड़ा दुरुपयोग हो रहा है।

असलमें स्त्रियोंको पर-पुरुषमात्रसे ही दूर रहना चाहिये। स्त्री-पुरुषको पास-पास रहकर धर्मको बचाये रखना बहुत ही कठिन है। ऐसे सैकड़ों-हजारों उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध है कि महात्मा, भक्त, आचार्य और पण्डित, पुजारी आदि कहलानेवाले लोगोंके द्वारा सरल-हृदया स्त्रियोंका बहुत तरहसे पतन हुआ है और हो रहा है। कहीं भगवान् श्रीकृष्णकी महान् पवित्र लोकोत्तर व्रजलीला और गोपीप्रेमके नामपर पाप किये जाते हैं। कहीं मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्रके नामपर रामविवाह आदिके प्रसंगसे स्त्री-समाजके सामने गन्दे पद, गन्दी गालियाँ गायी जाती हैं और नारी-समाजको पतनके गर्तमें ढकेला जाता है, तो कहीं गुरुदेव स्वयं भगवान्‌का स्वरूप बनकर शिष्याओंसे

---

* भर्ता नाथो गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च।
तस्य वश्यं चरेद् या तु सा कथं सुखमाप्नुयात्॥
(बृहन्नारदीयपुराण, उ० १४। ४०)

पति ही नाथ, गति, देवता तथा गुरु है। उसपर जो स्त्री वशीकरणका प्रयोग करती है, वह कैसे सुख पा सकती है?

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥

द्विजातियोंके गुरु अग्निदेव हैं, वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है, स्त्रियोंका गुरु उनका पति है और अभ्यागत सबका गुरु है।

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः॥

स्त्रीके लिये पति ही देवता, पति ही बन्धु और पति ही गुरु है, इसलिये प्राण देकर भी विशेषरूपसे पतिका प्रिय कार्य करना चाहिये।

आत्मसमर्पण करवाते हैं। कहाँतक कहा जाय, अभी उस दिन हमें एक बहुत लम्बा पत्र मिला है, जिसमें एक सज्जनने उनके गुरु भगवान्‌के द्वारा उनकी धर्मपत्नीको किस प्रकार धर्मच्युत किया गया—इसका बड़ा ही रोमांचकारी वर्णन किया है। भगवान् और धर्मके नामपर भगवान्‌के मन्दिरमें, भगवद्विग्रहके सम्मुख ऐसे-ऐसे दुराचरण किये जाते हैं जिनकी कल्पनासे भी महान् दुःख होता है। पर जब वस्तुतः ऐसा होता है, तब क्या कहा जाय। अतएव हमारी सरलहृदया श्रद्धासम्पन्ना देवियोंको चाहिये कि वे अपने सतीत्वको ही सबसे बढ़कर मूल्यवान् धन समझें और किसी भी सन्त-महात्मा, गुरु, आचार्य, भक्त, प्रेमी, रसिक, देशसेवक, समाजसेवक आदिके कुसंगमें कभी न पड़ें। न तो एकान्तमें किसी भी पर-पुरुषसे मिलना चाहिये, न किसीका कभी स्पर्श ही करना चाहिये और न किसीको गुरु बनाकर या प्रेमी महात्मा मानकर गन्दी चर्चामें अकेले या अन्यान्य स्त्रियोंके साथ सम्मिलित ही होना चाहिये; फिर वह चर्चा चाहे भगवान्‌की पवित्र लीलाके नामपर ही क्यों न की जाती हो। सच्चे सन्त-महात्मा, भक्त, प्रेमीजन ऐसा दुराचार कभी नहीं कर सकते। जो ऐसा करते हैं, वे सन्त-महात्माओंके वेशमें छिपे हुए पापी हैं, जो अपनी कुत्सित कामनाकी पूर्तिके लिये स्वाँग धारण करके इन पवित्र वेषोंको कलंकित कर रहे हैं और सच तो यह है कि इस घोर कलियुगमें ऐसे लोग बहुत हो गये हैं। इनसे बचना ही चाहिये।

जैसे धर्मके क्षेत्रमें यह बुराई है, वैसे ही राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रमें भी यह बुराई कम नहीं है। 'बहिनजी' कहकर पुकारनेवाले अनेकों दुष्ट व्यक्ति देशभक्त और समाज-सेवकका पवित्र बाना धारण किये हुए और स्त्री-समाजके दुःखोंके प्रति सहानुभूतिके आँसू बहाते हुए इसी प्रकारके कुकर्मोंमें रत रहते हैं। इसी दुराचारके लिये आज बहुत-से विधवाश्रम और महिलाश्रम चलाये जा रहे हैं। यह हमारा महान् पतन है, पर है नग्न सत्य! सावधान!

२१ स्त्री-शिक्षा और सहशिक्षा

प्राय: सभी धार्मिक तथा विद्वान् महानुभावोंका यह मत है कि वर्तमान धर्महीन शिक्षाप्रणाली हिन्दू-नारियोंके आदर्शके सर्वथा प्रतिकूल है; फिर जवान लड़के-लड़कियोंका एक साथ पढ़ना तो और भी अधिक हानिकर है। इस सहशिक्षाका भीषण परिणाम प्रत्यक्ष देखनेपर भी मोहवश आज उसी मार्गपर चलनेका आग्रह किया जा रहा है। इसका कारण प्रत्यक्ष है।

जिन बातोंको हमारे यहाँ पतन समझा जाता है, वही बातें आजके जगत्‌की दृष्टिमें उत्थान या उन्नतिके चिह्न मानी जाती हैं। पश्चिमीय सभ्यताका आदर्श आज हमारे हृदयोंमें सबसे ऊँचा आसन प्राप्त कर चुका है, अतएव अन्धे होकर उसकी ओर स्वयं अग्रसर होना और दूसरोंको ले जानेकी चेष्टा करना स्वाभाविक ही है।

पहले 'समानशिक्षा' पर कुछ विचार करें। शिक्षाका साधारण उद्देश्य है मनुष्यके अन्दर छिपी हुई पवित्र तथा अभ्युदयकारिणी शक्तियोंका उचित विकास करना। परंतु क्या पुरुष और स्त्रीमें शक्ति एक-सी है? क्या पुरुष और स्त्रीकी शक्तिके विकासका क्षेत्र एक ही है? क्या सब बातोंमें पुरुषके समान ही स्त्रीको शिक्षा ग्रहण करनेकी आवश्यकता है? गहराईसे विचार करनेपर स्पष्ट उत्तर मिलता है 'नहीं'। दोनोंकी शरीर-रचनामें भेद है, दोनोंके कार्योंमें भेद है, दोनोंके हृदयोंमें भेद है और दोनोंके कर्मक्षेत्र भी विभिन्न हैं। अत: इस भेदको ध्यानमें रखकर ही शिक्षाकी व्यवस्था करनी चाहिये। इस प्रकृति-वैचित्र्यको मिटाकर आज हम प्रमादवश स्त्री-पुरुषको सभी कार्योंमें समान देखना चाहते हैं। इस असम्भव साम्यवादकी मोहिनी आशाने हमारी मतिको तमसाच्छन्न कर दिया है, इसीसे हमें आज प्रत्यक्ष भी अप्रत्यक्ष हो रहा है। ध्यानसे

देखनेपर दोनोंमें दो प्रकारकी शक्तियाँ माननी पड़ती हैं और दोनोंके दो क्षेत्र भी साबित होते हैं। स्त्रियोंका क्षेत्र है घर, पुरुषका क्षेत्र है बाहर। स्त्री घरकी स्वामिनी है, पुरुष बाहरका मालिक है। 'घर' और 'बाहर' से यह मतलब नहीं कि स्त्री सदा घरके अन्दर बन्द रहे और पुरुष सदा बाहर ही रहे। स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर ही एक सच्चा 'घर' है। पति बाहर जाता है, उसी 'घर' के लिये और स्त्री घरमें रहती है, उसी 'घर' के लिये। इसी प्रकार आवश्यक होनेपर धार्मिक या सामाजिक कार्यके निमित्त स्त्री घरकी मर्यादाके अनुसार पति-पुत्रादिके साथ बाहर जाती है उसी 'घर' के लिये—'घर' को भूलकर स्वतन्त्र शौकसे नहीं। पति घरमें आता है 'घर' के लिये—'घर' को भूलकर बाहरकी सफलतामें फूलकर, अभिमानमें डूबकर, हुकूमत करनेके लिये नहीं। घर-बाहरकी यह व्यवस्था, जाना-आना, मिलना-जुलना, कमाना-खाना, पाठ-पूजन, दान-पुण्य, आचार-व्यवहार—सब इस एक ही 'घर' को सुरक्षित और समुन्नत बनानेके लिये है।

स्त्रीको मातृत्वमें जो सुख है, घरकी स्वतन्त्रतामें जो आनन्द है, वह दफ्तरकी क्लर्कीमें कहाँसे मिलेगा? स्त्रीका खास क्षेत्र मातृत्व है। उसके सारे अंग आरम्भसे इस मातृत्वके लिये ही सचेष्ट हैं। वह मातृत्वका पोषण करनेवाले गुणोंसे ही महान् बनी है। वह माता बनकर ही बड़े-बड़े यशस्वी पुरुषोंको अवतरित करती है। सब प्रकारके पुरुषोचित बड़े-से-बड़े प्रलोभनोंपर लात मारकर—बहुत बड़ा त्याग करके ही नारी इस मातृत्वके गौरवपूर्ण पदको प्राप्त करती और सुखी होती है। जिस शिक्षासे इस मातृत्वमें बाधा पहुँचती है, जिस शिक्षामें स्त्रीके पवित्र मातृत्वके आधारस्वरूप सतीत्वपर कुठाराघात होता है, वह तो शिक्षा नहीं है, कुशिक्षा है।

एक पत्रमें प्रकाशित हुआ था कि एक फैशनेबल पाश्चात्य युवतीने अपने बालकको इसलिये मार डाला कि उसको रात्रिके समय खाँसी

अधिक आती थी, इस कारण वह बहुत रोता और इससे युवतीके सुख-शयनमें विघ्न होता था। एक युवतीने बच्चेके पालन-पोषणसे पिण्ड छुड़ानेके लिये आत्महत्या कर ली थी। मातृत्वका यह विनाश कितना भयंकर है? परंतु जिस उच्च शिक्षाके पीछे आज हम व्याकुल हैं, जिस सभ्यताका प्रभाव आजकी हमारी स्त्री-शिक्षाको संचालित कर रहा है, उस सभ्यताके मातृत्व-नाशका तो यही नमूना है। आज हम स्त्रियोंके मातृत्वका विनाशकर उन्हें नेतृत्व करना सिखाते हैं, परंतु यह भूल जाते हैं कि यदि मातृत्व या सतीत्वका आदर्श न रहा, यदि स्त्री अपने स्वाभाविक त्यागके आदर्शको भूल गयी—वह स्नेहमयी माँ, प्रेममयी पत्नी या त्यागमयी देवी न रही, तो उसका नेतृत्व किसपर होगा?

याद रखना चाहिये कि विदेशी भाषामें बी०ए०, एम०ए० हो जाना कोई खास शिक्षा नहीं है। परायी भाषा सीखकर ही कोई स्त्री विदुषी नहीं हो जाती, इसीसे उसमें कोई दिव्य गुण नहीं आ जाते। विदेशी भाषा सीखनेमें भी आपत्ति नहीं, यदि उससे कोई हानि न हो तो; परंतु अपनी शुद्ध संस्कृतिका बलिदानकर उसके बदले विदेशी भाषा सीखकर शिक्षिता कहलाना तो बहुत ही घाटेका सौदा है। इस शिक्षाके फलस्वरूप स्त्रियोंमें आजतक जो नवीन सामाजिक प्रयोग शुरू हुए हैं, उनसे भी उनकी और समाजकी नैतिक और धार्मिक दोनों ही दृष्टियोंसे यथेष्ट हानि हो रही है। इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि स्त्रियोंको पढ़ना-पढ़ाना नहीं चाहिये। द्रौपदी बहुत बड़ी विदुषी थी, राज्य-संचालन कर सकती थी और महाभारत-युद्धकी मन्त्रणासभामें भी वह अपने पतियोंके साथ रहती थी; परंतु वह आदर्श सद्गृहिणी भी थी। अहल्याबाई विदुषी और धर्मशीला थी। अतएव सद्गृहिणी होकर ही स्त्रियाँ विदुषी बनें, ऐसी ही पढ़ाईकी आवश्यकता है। इस दृष्टिसे आजकी युनिवर्सिटियोंकी शिक्षा नारी-जातिके लिये निरर्थक ही नहीं, वरं अत्यन्त हानिकर है। जो शिक्षा स्त्रियोंके स्वाभाविक गुण मातृत्व, सतीत्व, सद्गृहिणीपन, शिष्टाचार और स्त्रियोचित हार्दिक उपयोगी

सौन्दर्य–माधुर्यको नष्ट कर देती है, उसे उच्च शिक्षा कहना सचमुच बड़े ही आश्चर्यकी बात है। जिस विद्यासे सद्‌गुण रह सकें और बढ़ सकें उसी विद्याको पढ़ाकर नारियोंको विदुषी बनाना चाहिये और इसीकी आवश्यकता भी है। शिक्षा यथार्थ वही है, जिससे संस्कृतिकी रक्षा तथा सद्‌गुणोंका विकास हो। यह जिसमें हो वही सुशिक्षिता है। इसलिये वर्तमान स्त्री–शिक्षामें आमूल परिवर्तन होना चाहिये और ऐसी शिक्षा–पद्धति बननी चाहिये जिससे नारीको अपने स्वरूपका तथा कर्तव्यका यथार्थ ज्ञान हो।

अब सहशिक्षापर विचार कीजिये। स्त्रियोंमें बहुत–से स्वाभाविक गुण हैं। उन्हीं गुणोंके कारण वे महान् पुरुषोंकी माताएँ बनती हैं। उन्हीं गुणोंका विकास करना स्त्री–शिक्षाका उद्देश्य होना चाहिये। परंतु साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि जो चीज जितनी बढ़ी–चढ़ी होती है, वह उलटे मार्गपर चले तो उससे हानि भी उतनी ही अधिक होती है। स्त्रीको उन्नत बनानेवाले त्याग, सहनशीलता, सरलता, तप, सेवा आदि अनेक आदर्श गुण हैं। परंतु स्त्री यदि चरित्रसे गिर जाती है तो फिर उसके यही गुण विपरीत दशामें पलटकर उसे अत्यन्त भयंकर बना देते हैं।

स्त्री और पुरुषके शरीरकी रचना ही ऐसी है कि उनमें एक–दूसरेको आकर्षित करनेकी विलक्षण शक्ति मौजूद है। नित्य समीप रहकर संयम रखना असम्भव–सा है। प्राचीन कालके तपोवनमें निर्मल वातावरणमें रहनेवाले जैमिनि, सौभरि, पराशर–सरीखे महर्षि और न्यूटन और मिल्टन–जैसे विवेकी पुरुष और वर्तमान कालके बड़े–बड़े साधक पुरुष भी जब संसर्ग–दोषसे इन्द्रिय–संयम नहीं कर सकते, तब विलास–भवनरूप सिनेमाओंमें जानेवाले, गन्दे उपन्यास पढ़नेवाले, तन–मन और वाणीसे सदा शृंगारका मनन करनेवाले, भोगवादको प्रश्रय देनेवाली केवल अर्थकरी विद्याके क्षेत्र–कॉलेजोंमें पढ़नेवाले और यथेच्छ आचरणके केन्द्रस्थान छात्रावासोंमें निवास करनेवाले, विलासिताके पुतले युवक–युवतियोंसे शुकदेवके सदृश इन्द्रिय–संयमकी आशा करना

तो जान-बूझकर अपने-आपको धोखा देना है। परंतु क्या किया जाय, आज बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् भी यूरोपका उदाहरण देकर सहशिक्षाका समर्थन कर रहे हैं, मतिवैचित्र्य है।

कुछ लोग संस्कृत नाटकोंके आधारपर प्राचीन गुरुकुलोंमें सहशिक्षाका होना सिद्ध करते हैं। परंतु उन्हें यह जानना चाहिये कि प्राचीन ग्रन्थोंमें कहीं भी कन्याओं और स्त्रियोंका ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर एक साथ पढ़नेका प्रमाण नहीं मिलता, गुरु-कन्याओंके साथ भाई-बहिनके नाते ब्रह्मचारी गुरुकुलमें अवश्य रहते थे। परंतु गुरुकुलोंमें अत्यन्त कठोर नियम थे। सभी बातोंमें संयम था और आजकलके कॉलेज-होस्टलोंकी तरह विलासिता और स्त्री-पुरुषकी परस्पर कामवृत्ति जगानेवाले साधन वहाँ नहीं थे। इतनेपर भी कच-देवयानीके इतिहासके अनुसार कहीं-कहीं आकर्षण होनेकी सम्भावना थी ही। अतएव आजकलकी सहशिक्षाका समर्थन इससे कदापि नहीं हो सकता।

कुछ वर्षों पूर्व लाहौरके एक सुधारक पत्रमें लड़के-लड़कियोंकी सहशिक्षाके विरोधमें एक जिम्मेदार सज्जनका लिखा एक लेख निकला था, जिसमें लिखा था कि........की लेडी हेल्थ आफीसरकी घोषणाका स्वाध्याय किया जाय तो उन्होंने........के विद्यालयोंमें पढ़नेवाली विद्यार्थिनियोंके स्वास्थ्यकी देखभाल करके की है कि बारह वर्षसे ऊपरकी आयुवाली क्वाँरी लड़कियोंमेंसे ९० प्रतिशतके लगभग आसवती (गर्भवती) और गर्भपात करनेवाली पायी जाती हैं। यदि निष्पक्षतासे देखा जाय तो सब ओर यही आग लगी हुई है; परंतु माता-पिता और देशके नेता क्या सोच रहे हैं, यह हमारी समझसे बाहर है।

९० प्रतिशत तो बहुत दूरकी बात है, १० प्रतिशत भी हो तो बहुत ही भयानक है। विश्वास नहीं होता कि यह संख्या सत्य है। सम्भव है छपनेमें भूल हुई हो, परंतु इतना तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि आजकल स्कूल-कॉलेजोंमें पढ़नेवाली कुमारी कन्याओंके चरित्रोंके बिगड़नेकी सम्भावना बहुत अधिक है और इसीलिये ऐसी घटनाओंकी

संख्या दिनोदिन बड़े वेगसे बढ़ रही है और इसीसे आजकी ये लड़कियाँ सती सीता-सावित्रीके नामसे भी चिढ़ने लगी हैं*। जब लड़कियोंका यह हाल है तब स्वेच्छाचारको ही आदर्श माननेवाली शिक्षिता वयस्का स्त्रीका क्या हाल हो सकता है, यह सोचते ही हृदय काँप उठता है। पाश्चात्य देशोंमें तो ऐसा होता था, पर अब यहाँ भी वैसा ही होने लगा। यही हमारी उन्नति है, यही हमारा जागरण है। इसलिये इस विषयपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिये और प्रगतिके नामपर इस बढ़ती हुई पतनकी धाराको रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये।

---

* कुछ वर्षों पूर्व 'हिन्दुस्तानटाइम्स' के प्रतिनिधिने शिमलाके एक सभ्य समाजका वर्णन करते हुए लिखा था कि एक श्रीमतीजीने प्राचीन स्त्रियोंका खूब मजाक उड़ाया और एकने तो यहाँतक कह डाला कि सीता और सावित्रीको दफना दो, उन्होंने हमारा कौन-सा उपकार किया है। उन्होंने कहा—

Sita could have done better than meekly allow her husband to persist in his foolish decision to go to the forest .... And I think Savitri could have better employed her time and energy than running after Yama to fetch her husband's soul.

'रामने वनके लिये प्रस्थान करनेका जो मूर्खतापूर्ण निश्चय किया था; सीताको चाहिये था कि वह उसका विरोध करती, न कि चुपचाप उन्हें उसपर अमल करने देती.......और मेरी समझसे सावित्री भी पतिको पुनर्जीवित करनेके लिये यमके पीछे दौड़नेकी अपेक्षा अपने समय और शक्तिको किसी अच्छे काममें लगा सकती थी।'

यही नहीं, उन्होंने यहाँतक कह डाला, 'निस्सन्देह ये कहानियाँ स्त्रियोंके मनमें यह बात जमानेके लिये ही गढ़ी गयी हैं कि पतिके बिना उनका कोई (स्वतन्त्र) अस्तित्व नहीं है और हमें इसी भावके खिलाफ लड़ना है। इसलिये मेरी यह सम्मति है कि सीता और सावित्री-जैसी बावलियों (opiates) से, जिनके साथ हमें बार-बार घसीटा जाता है, देशके सर्वोत्तम हितोंके लिये जल्दी ही हमें अपना पिण्ड छुड़ा लेना चाहिये।' और वह किसलिये? वे कहती हैं—'पतिकी पूजाको हम कतई बर्दाश्त नहीं करेंगी। हम न तो पति परमात्माको चाहती हैं, न पत्नी देवियोंको।'

२२ सन्ततिनिरोध

वर्तमान समयमें कई कारणोंसे सन्ततिनिरोधका भी प्रश्न छिड़ा हुआ है जो कुछ दृष्टियोंसे आवश्यक भी जान पड़ता है। यह सत्य है कि भारतके समान गरीब देशमें इस महान् महँगीके युगमें अधिक सन्तान माता-पिताके लिये बड़े ही सन्तापका हेतु होती है और उसका निरोध या सीमित होना अवश्य ही लाभप्रद माना जा सकता है; परंतु किया क्या जाय; यह तो विधिका विधान है। पूर्वकर्म भी कोई वस्तु है, उसका फल सहज ही टल नहीं सकता। जिस जीवका जहाँ जन्म बदा है, वहाँ होगा ही—यह सिद्धान्त है; परंतु यदि कोई इसे न भी माने तो सन्ततिनिरोधका सबसे बढ़िया तरीका एकमात्र इद्रियसंयम है। सन्ततिनिरोधकी आवश्यकता और साधन बतलानेवाली मिस सेंगर-जैसी विदेशी रमणीके सद्भावोंका अनादर न करते हुए भी यह कहना ही पड़ता है कि उनके बतलाये हुए साधन भारतीय संस्कृतिके अनुसार नीति, सदाचार और धर्म सभी दृष्टियोंसे हानिकर ही नहीं वरं पापपूर्ण हैं। इस प्रकारकी सन्ततिनिरोधकी प्रणालीमें व्यभिचारकी वृद्धि और कामवासनाकी निष्कण्टक चरितार्थताकी सम्भावना ही प्रत्यक्ष रूपसे छिपी है। महात्मा गाँधीने एक लेखमें लिखा था—'इन कृत्रिम साधनोंसे ऐसे-ऐसे कुपरिणाम आये हैं, जिनसे लोग बहुत कम परिचित हैं। स्कूली लड़के और लड़कियोंके गुप्त व्यभिचारने क्या तूफान मचाया है, यह मैं जानता हूँ ×××××। मैं जानता हूँ, स्कूलोंमें, कॉलेजोंमें ऐसी अविवाहिता जवान लड़कियाँ भी हैं, जो अपनी पढ़ाईके साथ-साथ कृत्रिम सन्तति-निग्रहका साहित्य और मासिक पत्र बड़े चावसे पढ़ती रहती हैं और कृत्रिम साधनोंको अपने पास रखती हैं। इन साधनोंको विवाहित स्त्रियोंतक ही सीमित रखना असम्भव है और विवाहकी पवित्रता तो तभी लोप

हो जाती है जब कि उसके स्वाभाविक परिणाम सन्तानोत्पत्तिको छोड़कर महज अपनी पाशविक विषय-वासनाकी पूर्ति ही उसका सबसे बड़ा उपयोग मान लिया जाता है।'

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मनुष्योंके हृदयमें कृत्रिम सन्ततिनिग्रहके इस आन्दोलनसे पवित्रताके स्थानपर किस प्रकार घृणित पाशविक कामका आधिपत्य हो रहा है और किस प्रकार हमारे अपरिपक्वमति बालक और बालिकाएँ इसके शिकार होकर अपना सर्वनाश कर रहे हैं!

सन्ततिनिरोधके लिये संयमकी आवश्यकता है। एक प्रसवके बाद दूसरे प्रसवके बीचमें पाँच सालका समय रहे तो सन्ततिनिरोध अपने-आप ही हो जायगा।
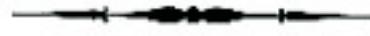
२३ हिन्दू-विवाहकी विशेषता

आर्यसंस्कृतिमें विवाह एक पवित्र संस्कार है। नर-नारीकी बलवती इन्द्रिय-लालसाको संयमित करके—प्रवृत्तिमें ही निवृत्तिका भाव रखकर जीवनको भगवान्‌की ओर लगा देनेके लिये यह संस्कार है। अन्यान्य धर्मोंमें विवाह एक प्रकारका सौदा-शर्तनामा (Contract) है, इसीलिये उसकी कानूनसे रजिस्ट्री आवश्यक होती है और वह शर्त टूटनेपर चाहे जब टूट सकता है, वैसे ही जैसे किसी व्यापारमें दो हिस्सेदार अनबन होनेपर चाहे जब अलग-अलग हो सकते हैं। पर हिन्दू-विवाह ऐसा नहीं है, वह धार्मिक कृत्य है, वह आध्यात्मिक साधना है, जिसमें न तो रजिस्ट्रीकी आवश्यकता है और न उसके कभी टूटनेका प्रश्न है। उसमें शास्त्रसंयमित उपभोग है, पितृ-ऋणकी मुक्तिके लिये सच्चरित्र पुत्रका उत्पादन है और यज्ञ-दान-पुण्यादिके द्वारा तथा पितृतर्पण-श्राद्धादि सत् कर्मोंके द्वारा शुभ धर्मका संग्रह है और संयमपूर्ण साधनाके द्वारा भगवत्प्राप्तिका परम लाभ प्राप्त करना है। इसलिये हिन्दू नर-नारीका यह पवित्र सम्बन्ध केवल जीवनभरके लिये ही नहीं , मृत्युके उपरान्त भी रहता है। हमारी विवाहकी वैदिक विधि ऐसी है कि उससे दो मिलकर एक-दूसरेके अर्द्धांग हो जाते हैं और दोनों ही त्यागपूर्वक जीवनको प्रेममय बनाकर परस्पर सुख पहुँचाते रहते हैं। दोनोंका सुख मिलकर ही एकका सुख होता है। नारी पतिकी 'अर्द्धांगिनी' और घरकी 'सम्राज्ञी' होती है। सदा दोनोंका साथ है—दोनोंका निःसंकोच व्यवहार है, पर वह मालिक और गुलामकी तरह नहीं है। वह है अभिन्नात्माकी भाँति। मानो दो देह हैं; आत्मा एक ही है। आचरणमें कहीं सख्य-भाव है, कहीं स्वामी-सेवकभाव है, कहीं प्रिया-प्रियतमभाव है तो कहीं माता-पुत्रका-सा भाव भी है, पर सर्वत्र है—केवल एकात्मभाव। यह एकात्मभाव ही हिन्दू-विवाहकी विशेषता है।

२४ विवाह-विच्छेद (तलाक)

आजकल कुछ लोग इस प्रयत्नमें हैं कि हिन्दू-नारीको कानूनद्वारा विवाह-विच्छेदका अधिकार प्राप्त हो। जो लोग इस समय हिन्दू-विवाहसम्बन्धी नये कानून बनाना चाहते हैं, उनकी नीयतपर सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है। जहाँतक अपना अनुमान और ज्ञान है, यह कहा जा सकता है कि वे सज्जन सचमुच ही भारतीय हिन्दूनारीकी कल्याणकामनासे ही इस प्रकारका प्रयत्न कर रहे हैं। उनके सामने ऐसे प्रसंग आये और आते रहते हैं, जिनके कारण उनके मनमें यह बात धँस गयी है कि कानूनमें परिवर्तन हुए बिना हिन्दू-स्त्रियोंपर जो सामाजिक अत्याचार होते हैं, उनका अन्त नहीं होगा। ऐसे विचारवाले सज्जन यह कहते हैं और उनके दृष्टिकोणसे ऐसा कहना ठीक भी है कि आदर्शवाद ऊँची चीज है, परंतु उसका प्रयोग इस युगमें सम्भव नहीं है, फिर आदर्शवादका प्रयोग केवल नारी-जातिके लिये ही क्यों हो? पुरुषोंके प्रति क्यों न हो? पुरुष चाहे जैसा चाहे जितना अनाचार, स्वेच्छाचार, व्यभिचार और अत्याचार करे, कोई आपत्ति नहीं, वह सर्वथा स्वतन्त्र है, परंतु सारे नियम, सारे बन्धन केवल स्त्रीके लिये हों—यह चल नहीं सकता। ऊँचे आदर्शकी चिल्लाहट मचानेसे काम नहीं चलेगा। इस प्रकार चिल्लाहट मचानेवालोंमें कितने ऐसे हैं जो स्वयं आदर्शकी रक्षा करते हैं, फिर इस युगमें पुराने आदर्शके अनुसार चलना भी सम्भव नहीं है। युगधर्मके अनुसार परिवर्तन करना ही पड़ेगा। पुरानी लकीरको पकड़े रहना तो पागलपन है आदि।

इसमें संदेह नहीं कि पुरुषोंके द्वारा कहीं-कहीं अपने घरकी स्त्रियोंके प्रति तथा विधवा बहिनोंके प्रति ऐसे-ऐसे अमानुषिक अत्याचार होते हैं, जिनको देख-सुनकर सहृदय पुरुषका मन प्राचीन प्रथाके प्रति विद्रोह कर उठता है और वह स्वाभाविक ही हर उपायसे

ऐसे अत्याचारोंको रोकनेका प्रयास करता है; परंतु इस प्रकार सुधारकी वास्तविक इच्छा होनेपर भी वे सज्जन यह नहीं विचारते कि 'इस समय यदि कुछ लोग झूठ बोलते और उसमें सुविधाका अनुभव करते हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि झूठ बोलना ही उचित है सत्यको छोड़ देना चाहिये; बल्कि यह कहना संगत होगा कि सत्य-भाषण और सत्य-पालनमें युगके प्रभावसे या हमारी कमजोरीसे जो अड़चनें पैदा हो गयी हैं, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।' यही वास्तविक सुधार है। कुछ लोग आदर्शकी रक्षा नहीं करते, इसलिये आदर्शके त्यागका आदेश न देकर आदर्शको सर्वथा छोड़ देनेकी चेष्टा न करके जो लोग आदर्शकी रक्षा नहीं कर सकते उनके लिये उसकी रक्षा कर सकनेयोग्य मनोवृत्ति और परिस्थिति उत्पन्न कर देना—तमाम अड़चनोंको मिटा देना—यही कर्तव्य है।

परंतु ऐसा न करके, एक आँख फूट गयी है तो दूसरी भी फोड़ दो—इस नीतिके अनुसार कुछ लोग आदर्शकी रक्षा नहीं कर रहे हैं, इसलिये जो कर रहे हैं उनके लिये भी उसका दरवाजा बन्द कर दो—आदर्शको रहने ही न दो—यह कहना वस्तुतः प्रमाद है, तथापि ऐसा कहा जा रहा है। इसका कारण किसीकी नीयतका दोष नहीं। इसमें प्रधान कारण है—आधुनिक सभ्यताका प्रभाव तथा विजातीय आदर्शको लेकर निर्माण की हुई आधुनिक शिक्षा। इसीका यह परिणाम हुआ है कि हमारी अपनी संस्कृतिके प्रति—अपनी प्राचीन प्रथाओंके प्रति हमारी दोष-बुद्धि दृढ़मूल हो गयी है। इसीसे हिन्दुस्तानका सच्चे हृदयसे कल्याण चाहनेवाले उच्च स्थितिके बड़े पुरुष भी इस विचारधाराके कारण बात-बातमें विदेशी संस्कृतिकी प्रशंसा करते हैं और अपनी संस्कृतिकी निन्दा। सचमुच आज अपनी सभ्यतामें हमारी अश्रद्धा और अनास्था तथा पश्चिमीय सभ्यतामें हमारी श्रद्धा और आस्था इतनी बढ़ गयी है कि हम आज वहाँके दोषोंको भी गुण समझकर ग्रहण करनेके लिये आतुर हैं। हमें अपने-आपपर इतनी घृणा

हो गयी है कि हमारी प्रत्येक प्राचीन प्रथामें हमें तीव्र दुर्गन्ध आने लगी है, हम उससे नाक-भौंह सिकोड़ने लगे हैं और इधर हमारी मानसिक गुलामी इतनी बढ़ गयी है कि दूसरे लोग जिसको अपना दोष मानकर उससे मुक्त होनेके लिये छटपटा रहे हैं, हम उसीको गुण मानकर उसका आलिंगन करनेको लालायित हैं। इसीसे आजका प्रगतिशील भारतीय तरुण परदेशी सभ्यताकी निन्दा करता हुआ भी पर-पदानुगामी, परानुकरण-परायण, परभावापन्न और पर-मस्तिष्कके सामने नत-मस्तक होकर उन्नति और विकासके नामपर अपनेको महान् विनाशकारी आगमें झोंक रहा है।

पाश्चात्य जगत्के मनीषीगण समाजका अध:पतन होता देखकर जिन चीजोंको समाजसे निकालना चाहते हैं, हमारे शिक्षित प्रगतिमान् भारतीय उसीको ग्रहण करनेके लिये व्याकुल हैं। कुछ समय पूर्व ईसाई-जगत्के धर्माचार्य रोमके पोपने कहा था—'यूरोपमें तलाककी संख्या बहुत जोरोंसे बढ़ रही है, विद्यार्थियोंका ईश्वरविश्वास घट रहा है और अश्लील नाटकोंका प्रचार बढ़ रहा है। यह बहुत बुरी बात है।' सुधारवादियोंके नक्कारखानेके सामने बेचारे पोपकी यह तूतीकी क्षीण आवाज किसीके कानमें क्यों जाने लगी?

विवाह-विच्छेदकी आलोचना करती हुई विदुषी अंग्रेजमहिला श्रीमती एन० मैकिट्स एम० ए० ने लिखा है—

'सभी युगोंमें नर-नारियोंके जीवनके दो प्रधान अवलम्बन रहे हैं, एक विवाह और दूसरा घर। वर्तमान युगमें ये दोनों ही अवलम्बन डाईवोर्स (तलाक) नामक अमंगलकारी प्रेतके प्रभावसे तमसाच्छन्न हो गये हैं। इस प्रेतने नर-नारियोंके हृदयोंको भयसे भर दिया है। तलाकसे समाजका सर्वनाश होता है और यह समाजहितके सर्वथा प्रतिकूल है, इस बातको अनेक युक्तियोंसे सिद्ध किया जा सकता है। इसमें एक युक्ति तो यह है कि तलाकसे घर टूट जाता है और परिवार नष्ट हो जाता है। विवाहका प्रधान उद्देश्य है—सन्तानोत्पादन। इस उद्देश्यकी

पूर्तिके लिये पारिवारिक बन्धनकी आवश्यकता है। यदि पति-पत्नी मृत्युकालतक एक-दूसरेके प्रति पूरा विश्वास रखकर दाम्पत्य-बन्धन सुदृढ़ न बनाये रखें तो उपर्युक्त उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो सकती।'

आजकल स्वतन्त्र प्रेम (free love) की नयी रीति चली है। इसके अनुसार आधुनिक नर-नारी विवाह-बन्धनको शिथिल करके 'कामज-प्रेम' के स्वाभाविक अधिकारकी निर्बाध स्थापना करना चाहते हैं। इस नयी व्यवस्थाके परिणामस्वरूप मनुष्यकी वंशवृद्धि तो चलेगी, परंतु चलेगी बिलकुल स्वतन्त्र पद्धतिसे। पितृत्व और मातृत्वकी धारणा लुप्त हो जायगी और बच्चोंका दल कीट-पतंगोंकी तरह पलेगा। सब समान हो जायँगे। उनमें रहेगा न व्यक्तित्व और न रहेगी किसी उद्देश्यकी विशिष्टता ही............।

डॉक्टर डेनेवल महोदयने लिखा था—'हमारी समझमें विवाहसे तात्पर्य है दायित्वका वहन या बन्धन। इसमें दायित्वशून्यता या निर्बाध स्वतन्त्रताका कोई भी संकेत हम नहीं पाते। बन्द घर निरापद और शान्तिमय होता है। दरवाजा खुला रहनेपर उसमें चोर-डकैत आ सकते हैं और भी तरह-तरहके उत्पात, उपद्रव आकर घरकी शान्तिको भंग कर सकते हैं। यह बन्धनका सुख है। जिस घरका दरवाजा चौपट है, वह घर नहीं, वह तो सराय है।'

'विवाहके साथ ही यदि विवाह-विच्छेदका खुला द्वार छोड़ दिया जाय तो स्त्री-पुरुष दोनोंकी कोई विशिष्टता नहीं रह सकेगी। फिर तो विवाह और विच्छेद तथा नित्य नयी-नयी जोड़ीका निर्माण—यह तमाशा चलता रहेगा...........।'

'पाश्चात्य समाजमें विवाह एक प्रकारका शर्तनामा (Contract) होनेपर भी उसमें यह स्पष्ट निर्देश रहता है कि यह सम्बन्ध मृत्युकाल-तकके लिये है—till breath us do part।' यदि आरम्भसे ही पति-पत्नीके मनोंमें यह धारणा जाग्रत् रहेगी कि जब चाहे तभी मिलन टूट सकता है, तब तो देह-मनको शुद्ध रखना बहुत ही कठिन होगा। फिर

प्रेम-स्नेहकी दुहाई कोई नहीं मानेगा और फिर कौन किसके बच्चे-बच्चियोंको पालेगा।......... विवाह-विच्छेदकी बातके साथ ही पुनर्विवाहकी बात भी चित्तमें आ ही जाती है। इस पुनर्विवाहकी, चाहे जिसको देहसमर्पणकी कल्पनासे यदि सुसंस्कृत (Cultured) मनमें विद्रोह नहीं पैदा होगा तो फिर मनकी इस संस्कृतिका गौरव ही क्या है। फिर तो विवाह कानून-सम्मत एक रखेली रखनेका रूप (Legalized form of concubinage) होगा।

प्रेम और काममें बड़ा अन्तर है। प्रेममें त्याग है, उत्सर्ग है, बलिदान है। मनुष्य-जीवनकी पूर्ण परिणति प्रेमसे ही होती है। प्रेम त्यागस्वरूप है, उत्सर्गपरायण है। काम विषयलुब्ध है, भोगपरायण है। जहाँ केवल निजेन्द्रिय-सुखकी इच्छा है, वहाँ 'काम' है, चाहे उसका नाम प्रेम हो। वस्तुतः उसमें प्रेमको स्थान नहीं है। पशुमें प्रेम नहीं होता। इसीसे उनका दाम्पत्य क्षणिक भोग-विलासकी पूर्तिमें ही समाप्त हो जाता है। इसीसे कामको 'पाशविक वृत्ति' कहा जाता है। मनुष्यमें प्रेम है, इसलिये उसमें क्षणिक लालसा-पूर्ति नहीं है। वह नित्य है, शाश्वत है। विवाह उत्सर्ग और प्रेमका मूर्तिमान् स्वरूप है। इसीसे विवाह-बन्धन भी नित्य और अच्छेद्य है। जहाँ विवाह-विच्छेदकी बात है, वहाँ तो मनुष्यके पशुत्वकी सूचना है। विवाहमें जहाँ विच्छेदकी सम्भावना आ जाती है, वहीं नर-नारीका पवित्र और मधुर सम्बन्ध अत्यन्त जघन्य हो जाता है। फिर मनुष्य और पशुमें कोई भेद नहीं रह जाता। विवाह-विच्छेदकी प्रथा चलाना मानवताको मारकर उसे कुत्ते-कुतियाके रूपमें परिणत कर देना है!!

हिन्दू-विवाह दूसरी जातियोंकी भाँति कोई शर्तनामा नहीं है, पवित्र धर्म-संस्कार है। एक महायज्ञ है, स्वार्थ इसकी आहुति है और नैष्कर्म्यसिद्धि या मोक्ष इसका परम धन है। यज्ञकी पवित्र अग्निसे इसका आरम्भ होता है, परंतु श्मशानकी चिताग्नि भी इस बन्धनको तोड़

नहीं सकती। त्यागद्वारा प्रेमकी पवित्रताका संरक्षण करना और प्रेमको उत्तरोत्तर उच्च स्थितिपर ले जाना विवाहका महान् उद्देश्य है। प्रेम, स्नेह, प्रीति, अनुराग, मैत्री, मुदिता, करुणा आदि पवित्र और मधुर भाव मनुष्य-जीवनकी परम लोभनीय सम्पत्ति है। इस परम सम्पत्तिकी रक्षा होती है त्याग, क्षमा, सहनशीलता, धैर्य और सेवा आदि सद्वृत्तियोंके द्वारा और इन्हींसे इन भावोंकी वृद्धि भी होती है।

हिन्दू-विवाह-संस्कारमें पति-पत्नीकी यह निश्चित धारणा होती है कि हमारा यह सम्बन्ध सर्वथा अविच्छिन्न है। जन्म-जन्मान्तरमें भी यह कभी नहीं टूट सकता। ऐसी ही प्रार्थना और कामना भी की जाती है। इसलिये कभी किसी कारणवश यदि किसी बातपर परस्पर मतभेद हो जाता है अथवा आपसमें झगड़ा भी हो जाता है तो वह बहुत समयतक टिकता नहीं। त्याग, क्षमा, सहिष्णुता, धैर्य आदि वृत्तियाँ दोनोंके मनोंको शीघ्र ही सुधारकर कलह शान्त करा देती हैं; अतएव प्रेम अक्षुण्ण बना रहता है। जीवनमें दुःखके दिन अधिक कालतक स्थायी नहीं होते, क्योंकि पति-पत्नी दोनोंको ही एक-दूसरेसे मेल करनेकी इच्छा हो जाती है। 'हम दोनों जीवनभरके संगी हैं, यह धारणा अत्यन्त दृढ़ होनेके कारण पारस्परिक विश्वास और प्रेम केन्द्रीभूत हो जाते हैं। और किसी प्रकार किसी कारणवश सामान्य उत्तेजना, जोश, क्रोध या अविश्वासके उदय होनेपर सहसा ऐसा कोई कार्य प्रायः नहीं होता, जिससे सम्बन्ध टूट जाय।

उत्तेजना, जोश या क्रोध आदिका कार्य यदि उसी समय नहीं हो जाता, बीचमें कुछ समय मिल जाता है तो फिर उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है, जितनी ही देर होती है उतना ही उनका आवेग घटता है। कुछ समय बाद तो वे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। परंतु यदि विच्छेदका दरवाजा खुला हो तो जहाँ जोश आया और जोशके जोरसे होश गया कि वहीं सम्बन्ध टूट गया—तलाक कर दिया गया। इसीसे अमेरिका-जैसे देशमें प्रतिवर्ष लगभग सात-आठ लाख

तलाकके मामले होते हैं और उत्तरोत्तर इनकी संख्या बढ़ रही है। रूसमें तो आज विवाह, कल तलाक—यही खेल चल रहा है! हमारे यहाँ विवाह-बन्धनके कारण स्त्री-पुरुष पारिवारिक जीवनमें इतने बँध जाते हैं कि कभी सामयिक उत्तेजनाके कारण अलग होनेकी इच्छा होती भी है तो वैसा सहजमें हो नहीं पाता। इससे पारिवारिक संघटन टूटता नहीं।

साथ ही, जब विवाह होते ही पत्नी-पति दोनोंको यह निश्चय हो जाता है कि यह मेरा पति है और यह मेरी पत्नी है, हम दोनोंका यह प्रेममय पवित्र सम्बन्ध नित्य और अटूट है तब दोनोंके मन केन्द्रीभूत हो जाते हैं। इसलिये उनके मनोंके लिये अन्य किसी ओर जानेकी सम्भावना ही नहीं रहती। कोई कितना ही सुन्दर आकर्षक और गुणवान् स्त्री-पुरुष क्यों न हों, 'उनसे अपना क्या काम'—यह भावना दृढ़ रहती है। ऐसी अवस्थामें नर-नारीके अबाध मिलनकी बात दूर रही, पर-स्त्री या पर-पुरुषके चिन्तनको उन्हें कामलोलुप दृष्टिसे एक बार देखनेमात्रको भी महान् पाप माना जाता है तथा प्रायः भले नर-नारी इस पापसे बचनेका प्रयत्न भी करते रहते हैं। पाश्चात्य देशोंमें ऐसी बात नहीं है। वहाँ व्यभिचारकी संख्या बहुत संकुचित है। नर-नारीके शारीरिक मिलनको वे स्वाधीनता मानते हैं, व्यभिचार नहीं। इसीसे इस स्वाधीनताका उपभोग करनेके लिये वे लालायित रहते हैं। इसीका नाम उनके यहाँ 'स्वतन्त्र प्रेम' (free Love) है। विवाह-बन्धनसे इस पापमें स्वाभाविक ही रुकावट होती है; और विवाह-विच्छेदसे इस पापको प्रोत्साहन मिलता है। अतएव तलाकका कानून बन जानेपर, अन्य कारण न होनेपर भी बहुत-से विवाह-विच्छेदके मामले तो केवल इसी निमित्तसे होने लगेंगे।*

---

* विदेशोंमें यथार्थतः यही हो रहा है। कुछ समय पहले एक प्रसिद्ध वकील महोदयने 'सण्डे एक्सप्रेस' के प्रतिनिधिसे कहा था कि 'तलाकोंकी संख्या-वृद्धिके

विवाहित स्त्री-पुरुषके पारस्परिक व्यवहारके सम्बन्धमें आलोचना करती हुई श्रीमती राबिन्सन् कहती हैं—'हिस्सेदारीके कारबारमें जैसे हिस्सेदारों (Copartners) को एक-दूसरेको मानकर चलना पड़ता है—मौज या मनमानी करनेसे कारबार नहीं चलता, वैसे ही पति-पत्नीके हिस्सेदारीमें घरका भी नियम है। दोनों एक-दूसरेसे मिलकर सलाह करके काम करेंगे तो घरका व्यापार सुचारुरूपसे चलेगा। यही विवाहका मुख्य उद्देश्य है, क्योंकि इस सहयोगितापर ही दोनोंकी सुख-शान्ति निर्भर है! एक-दूसरेके दोषों या भूलोंको क्षमाकी आँखोंसे देखकर चलनेसे ही हिस्सेदारी निभती है। नहीं तो उसका विच्छेद अवश्यम्भावी है। इस सहयोगिताको जिस पवित्र वृत्तिसे पोषण मिलता

बहुत-से कारणोंमें एक प्रधान कारण तो यह है कि नवीन विवाहित तरुणियाँ पारिवारिक जीवनको सुखी बनानेकी जरा भी चिन्ता नहीं करतीं। वे जरा-जरा-सी बातोंपर (मामूली पोशाक , फैशन, हँसी-मजाक, त्यौरी-ताने, सिगरेट, बिस्कुट और चाय-काफीतकपर) अपने पतियोंसे झगड़ पड़ती हैं।' वकील महोदयने यह भी कहा कि 'मेरे पास तलाक-सम्बन्धी अधिक मुकदमें युवक-युवतियोंके ही आते हैं, जो सामयिक उत्तेजनावश फुर्तीसे विवाह कर लेते हैं और कुछ महीने समुद्रतटकी ओर आमोद-प्रमोद करके जीवनसे तंग आकर तलाककी बात सोचने लगते हैं। कई अदालतोंमें स्त्रियोंके आँसुओंके दृश्य तो नहीं देखे जाते, पर मौन रहनेपर भी उनमें 'करुणा' बोलती है।' इसलिये कि उनका सारा सुख-स्वप्न कुछ पखवाड़ोंकी ज्योत्स्नामयी रात्रियोंके बाद ही विलास-प्रिय पुरुषोंके द्वारा तोड़ दिया जाता है। परंतु युवतियोंसे अधिक दुःखपूर्ण दृश्य तो उन महिलाओंका होता है जो प्रौढ़ आयुकी हैं और जो अदालतमें उन सुन्दर तरुणियोंकी ओर घूर-घूरकर सिसकती हैं, जिनके कारण उनके पतियोंने उन्हें परित्याग कर दिया है। ऐसे ही अभागे वे बच्चे हैं जिनका जन्म ऐसे माँ-बापोंसे हुआ है, जो कानूनन स्त्री-पुरुष नहीं समझे जाते थे। इसी प्रकार विवाह-विच्छेदकी संख्या भी बड़े जोरोंसे बढ़ रही है। विवाह तथा विवाह-विच्छेद खेलकी तरहसे होते हैं और तोड़ दिये जाते हैं, पशुओंका-सा व्यवहार हो गया है। आज हम भारतवासी भी इसीको उन्नति मानते हैं और इसीकी इच्छा करने लगे हैं। इससे अधिक दुर्दैव और क्या होगा?

है, उसीका नाम है प्रेम, प्रीति या अनुराग। मनमानी तृप्ति या स्वेच्छाचारके सुखको ही जीवनका उद्देश्य बना लेनेपर तो परिणाममें क्षोभ और पश्चात्ताप ही प्राप्त होगा। अतएव पति-पत्नीको परस्पर एक-दूसरेकी सहकर चलना चाहिये। स्वतन्त्रता या स्वेच्छाचारको सिर नहीं चढ़ाना चाहिये।

इस सहयोगिताके भावोंकी रक्षा जिस प्रेमसे होती है, विवाह-विच्छेदका मार्ग खुला रहनेपर विवाहमें उस प्रेमकी उत्पत्ति ही रुक जायगी। फिर सहयोगिता कहाँसे होगी? सहयोगिता न होनेपर तलाककी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ेगी ही। यूरोपमें यही हो रहा है और इसीसे वहाँका समाज आज अशान्ति और अनाचारका घर बना हुआ है। विवाह-विच्छेद होने तथा स्त्रीका दूसरे पुरुषसे और पुरुषका दूसरी स्त्रीसे विवाह होनेपर पहलेके बच्चे अनाथ हो जायँगे। स्त्रियोंमें मातृत्वकी जो महान् वृत्ति है और पितामें जो पितृत्वका पवित्र भाव है, वे क्रमशः नष्ट हो जायँगे। फिर तो बच्चोंका पोषण या तो रूसकी भाँति राज्य करेगा या उनकी दुर्दशा होगी।

अमेरिकाके भूतपूर्व प्रेसीडेंट रूजवेल्ट महोदयने अपनी जीवन स्मृतिमें कहा है—'मेरी उम्र उस समय दस वर्षकी थी। मैं बीमार था। बिछौनेपर पड़ा पुस्तककी तस्वीर देखा करता। बगलमें बैठी हुई माँ मुझे तस्वीरोंका भाव समझाया करती। मुझे बड़ा अच्छा लगता, नींद नहीं आती तो मेरी माँ मेरे मुँह-में-मुँह देकर मुझे सान्त्वना देती। पिता और माता दोनों ही मुझे लेकर व्यस्त रहते। कितनी कहानियाँ कहते। कहानियाँ—वह माता-पिताका स्नेह । उस स्नेहने ही मेरे सारे कष्टोंको मिटा दिया। यदि ऐसा न होता, यदि मुझ बीमारको बिछौनेपर फेंक दिया जाता और दो-तीन नर्सोंपर मेरा भार देकर मेरे माँ-बाप बाहर चले गये होते—पार्टीमें, नाटकमें, सान्ध्य-भोजनमें या राजनीतिक आलोचना-समितिमें—तो यह विचार करते ही मेरा शरीर काँप जाता है—फिर मेरा न जाने क्या होता। फिर रूजवेल्टके पलटनेकी कोई आशा नहीं रहती।'

मातृत्व और पितृत्वकी भावना नष्ट होनेपर समाजकी कैसी भयानक स्थिति हो सकती है, इसकी कल्पनासे ही हृदय काँप जाता है।

तलाकका कानून बना तो वह केवल स्त्रीके लिये ही नहीं होगा, पुरुषके लिये भी होगा और ऐसा होनेपर अधिक हानि स्त्री-जातिकी ही होगी; क्योंकि भारतवर्षमें अबतक भी स्त्री-जातिका पुरुषकी अपेक्षा बहुत कम पतन हुआ है! स्त्रियाँ पतिको तलाक देने बहुत कम आवेंगी—पुरुष बहुत अधिक आवेंगे। अतएव किसी भी दृष्टिसे तलाकका कानून श्रेयस्कर नहीं है। इसमें सब प्रकारसे हानि-ही-हानि है। इसलिये प्रत्येक नर-नारीको इसका विरोध करना चाहिये। पर दुःखकी बात है, आज भारतका शिक्षित नारी-समाज पतनको ही उत्थान मानकर 'तलाक' कानूनके लिये लालायित हो रहा है।

हिन्दू-शास्त्रके अनुसार सतीत्व परम पुण्य है और पर-पुरुष-चिन्तनमात्र महापाप है। इसीलिये आज इस गये-गुजरे जमानेमें भी स्वेच्छापूर्वक पतिके शवको गोदमें रखकर सानन्द प्राण-त्याग करनेवाली सतियाँ हिन्दूसमाजमें मिलती हैं। भारतवर्षकी स्त्री-जातिका गौरव उसके सतीत्व और मातृत्वमें ही है। स्त्री-जातिका यह गौरव भारतका गौरव है। अतः प्रत्येक भारतीय नर-नारीको इसकी रक्षा प्राणपणसे करनी चाहिये।

२५ विधवा-जीवनको पवित्र रखनेका साधन

विधवाका दु:ख अकथनीय है, उसका अनुमान दूसरा कोई भी नहीं कर सकता; परंतु यह भी परम सिद्ध है कि विधवाकी कामवासनाको जगाकर उसे कामोपभोगमें लगानेसे, उसे विषयसेविका बनानेसे, उसके पुनर्विवाहकी व्यवस्था कर देनेसे उसका दु:ख नहीं मिट सकता। दु:खका कारण है—हमारे अपने ही कर्म। और भविष्यमें यदि हम सुख चाहते हैं तो हमें वैसे ही संयमपूर्ण सत्कर्म करने चाहिये, जिनका परिणाम सुख हो। विषयसेवनकी सुविधाका परिणाम सुख नहीं होगा। स्त्री विधवा क्यों होती है? इसका कारण है—स्त्रीके पूर्वजन्मका असदाचार। यदि यहाँ भी यह पुन: असदाचारमें प्रवृत्त होगी तो उसका भविष्य और भी संकटपूर्ण होगा। सती अनसूयाजीने कहा है—

बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

स्कन्दपुराणमें कहा गया है—

या नारी तु पतिं त्यक्त्वा मनोवाक्कायकर्मभिः॥
रहः करोति वै जारं गत्वा वा पुरुषान्तरम्।
तेन कर्मविपाकेन सा नारी विधवा भवेत्॥

'जो नारी अपने पतिको त्यागकर मन, वचन, शरीर तथा कर्मसे जारका सेवन करती है; दूसरे पुरुषके पास जाती है, वह उस कर्मके फलस्वरूप जन्मान्तरमें विधवा होती है।'

यहाँतक कि पापोंके कारण पुरुषोंको भी अगले जन्ममें स्त्री-योनिमें जन्म लेकर विधवा होना पड़ता है—

यः स्वनारीं परित्यज्य निर्दोषां कुलसम्भवाम्।
परदाररतो हि स्यादन्यां वा कुरुते स्त्रियम्॥
सोऽन्यजन्मनि देवेशि स्त्री भूत्वा विधवा भवेत्।

(स्कन्दपुराण)

श्रीशंकरजी उमादेवीसे कहते हैं—'देवेश्वरी! जो पुरुष अपनी निर्दोष तथा कुलीन पत्नीको छोड़कर परस्त्रीमें आसक्त होता है या दूसरी स्त्रीको पत्नी बनाता है, वह जन्मान्तरमें स्त्री-योनिमें जन्म लेकर विधवा होता है।'

इससे यह सिद्ध है कि विधवापन पूर्वकर्मके फलस्वरूप ही मिलता है। इसका नाश शुभकर्म, तपस्या या भगवद्भजनसे ही होगा। पुनर्विवाह या विषय-सेवनसे यह दोष दूर नहीं हो सकता वरं उससे तो दोष और भी बढ़ जायगा, जो जन्मान्तरमें विशेष दुःखका कारण होगा। मुक्ति तो प्राप्त होगी ही नहीं, मानव-जीवन भावी दुःखोंकी विशाल भूमिका बन जायगा। इसीलिये विधवा स्त्रीको पतिके अभावमें तन्मय होकर परमपति भगवान्‌में मन लगानेका आदेश दिया गया है।

हिन्दू-स्त्रीका विवाह कोई सौदा नहीं है, जो तोड़ा जा सके। वह तो सदा अटूट रहता है। पतिके परलोकगमन करनेपर भी वह ज्यों-का-त्यों बना रहता है।

आज हिन्दू-विधवाकी ओरसे समाजमें जो एक ओर उदासीनता और दूसरी ओर उत्साह देखा जाता है, वह दोनों ही उसके लिये वस्तुतः महान् विपत्तिस्वरूप है। एक ओर तो समाजके पुरुष विधवाको भाँति-भाँतिसे दुःख देकर उसे धर्मच्युत करके पथ-भ्रष्ट करते हैं और दूसरी ओर उसपर दया दिखाकर उसे कामकी विषबेलिका सेवन करनेको उत्साहित करके पथ-भ्रष्ट करते हैं। ऐसी अवस्थामें विधवाके जीवनका दुःखमय होना स्वाभाविक है और विधवाकी दुःखभरी आहसे समाजका अमंगल भी अवश्यम्भावी है। इस विनाशसे समाजको बचाना हो तो विधवाके साथ बहुत सुन्दर, पवित्र और आदर्शपूर्ण व्यवहार करना चाहिये और साथ ही उसका जीवन पवित्र संन्यासीके

जीवनकी भाँति त्यागमय रह सके, इसकी व्यवस्था तथा इसीका प्रचार करना चाहिये। विधवा-जीवनको पवित्र तथा सुखी बनानेके कुछ उपाय ये हैं—

(१) विधवा-जीवनके गौरवका ज्ञान विधवाको कराना—उसको यह हृदयंगम करा देना कि विधवा-जीवन घृणित और दुःखमय नहीं है, बल्कि पवित्र दैवी जीवन है, जिससे भोग-जीवनकी समाप्तिके साथ ही आत्यन्तिक सुख और परमानन्दकी प्राप्ति करानेवाले आध्यात्मिक जीवनका आरम्भ होता है। उसे समझाना चाहिये कि मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। विषयसेवनसे विषयोंमें आसक्ति-कामनादि बढ़ते हैं। अतः विषयसेवन करनेवाली सधवा स्त्रियोंको भगवत्प्राप्तिकी साधनाका जो सुअवसर न मालूम कितने जन्मोंके बाद मिल सकेगा, वह उसको इसी जन्ममें अनायास मिल गया है। इसलिये वस्तुतः वह पुण्यशालिनी और भाग्यवती है; और जैसे विषय-विरागी त्यागी-संन्यासी सबके पूज्य, आदरणीय और श्रद्धास्पद होते हैं, वैसे ही वह भी पूजनीय और श्रद्धाकी पात्र है। सुख-दुःख किसी घटनामें नहीं, बल्कि मनके अनुकूल तथा प्रतिकूल भावोंमें हैं। एक संन्यासी स्वेच्छासे विषयोंका त्याग करके निवृत्तिमय जीवन बिताता है, इससे उसको सुखका अनुभव होता है और दूसरे एक आदमीको उसका सब कुछ छीनकर कोई जबरदस्ती घरसे निकाल देता है, उसको बड़ा दुःख होता है। दोनोंकी विषयहीनताकी बाहरी स्थिति एक-सी है; फिर एकको सुख, दूसरेको दुःख क्यों होता है? इसीलिये कि एक इस स्थितिमें अनुकूलताका अनुभव करता है और दूसरा प्रतिकूलताका। संसारीके लिये कामिनी-कांचन, विषय-भोगादि सुखरूप हैं; वही मनोभावना बदल जानेसे विरक्त संन्यासीके लिये दुःखरूप हो जाते हैं और संन्यासीके लिये जो त्याग सुखरूप है, उसमें संसारीको दुःखकी अनुभूति होती है। अतः विधवामें यदि ऐसी आस्था पैदा कर दी जाय कि विधवाका विषयविरहित जीवन उसके लिये परम गौरवकी वस्तु

है तथा मानव-जीवनके परम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है—इससे उसका जीवन अनादरणीय तथा कलंकमय नहीं हो गया है, वरं आदरणीय और गौरवमय हो गया है और सबको उसके साथ वस्तुतः ऐसा ही आदर, श्रद्धा तथा पूज्यभावका बर्ताव भी करना चाहिये—इससे विधवा अपने जीवनमें सुखका अनुभव करेगी। उसका जीवन पवित्र तथा संयमपूर्ण बना रहेगा।

(२) विधवा ससुरालमें हो तो सास-ससुरको और पीहरमें हो तो माता-पिताको विलासक्रियाका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये तथा अपने जीवनको सादा-सीधा संयमपूर्ण वानप्रस्थके सदृश तपोमय बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे विधवाको बड़ा सन्तोष होगा, उसका विषयोंकी ओर आकर्षण नहीं होगा और उसके धर्मच्युत होनेका भी डर नहीं रहेगा। उसके सामने घरवालोंका जो पवित्र आदर्श रहेगा, वह उसके कर्तव्य-पालनमें बल और उत्साह प्रदान करेगा। कार्य कठिन है, परंतु है बहुत ही लाभदायक और अवश्य-कर्तव्य।

इसीके साथ घरके अन्यान्य स्त्री-पुरुषोंको भी विषय-सम्बन्ध बहुत सावधानीसे करना चाहिये, जिससे विधवाका ध्यान उधर न जाय।

(३) विधवाका कभी तिरस्कार या अपमान नहीं करना चाहिये। उसे कटुवाक्य कभी नहीं कहना चाहिये। उसे घरका देवता समझना चाहिये। ऐसा मानना चाहिये कि उसका स्थान सधवा माता और सासकी अपेक्षा भी ऊँचा है। विधवा कोई सत्कार्य, दान, व्रतोत्सव, उद्यापन आदि करना चाहे तो अपने घरकी शक्तिके अनुसार विशेष उत्साह, धनव्यय और सहयोगके साथ उसको कराना चाहिये। उसमें जरा भी कृपणता नहीं करनी चाहिये, उसके पास सात्त्विक कार्य अधिक-से-अधिक बने रहने चाहिये, जिससे उसके मनको विषय-भोगोंकी ओर जानेका अवसर ही न मिले।

(४) विधवाके हृदयकी प्रेमधारा परिवारभरके सभी बालकोंके प्रति बहने लगे—इसके लिये उसे सुअवसर, सुविधा तथा उत्साह प्रदान करना

चाहिये। उसके प्रेम, परोपकार तथा सेवावृत्तिको आदर तथा गौरवके साथ जगाना चाहिये। वह घरमें सब बच्चोंकी स्नेहमयी माँ बन जाय तो उसको अपना जीवन पवित्रतासे बितानेमें बड़ी सहायता मिल सकती है।

(५) विधवाको तिरस्कार या अपमानके भावसे नहीं, किंतु उसके स्वरूपके गौरवके लिये,सादा जीवन बितानेके लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। विधवा सदाचारिणी हो, खान-पानादिमें संयम-नियमका पालन करे, तामसी-राजसी वस्तुओंका खान-पान-सेवन त्याग दे, अलंकार तथा रंगीन कपड़े न पहने* (इससे स्वाभाविक उत्तेजना होकर ब्रह्मचर्यव्रतको हानि पहुँचती है, यह वैज्ञानिक रहस्य है)। इधर-उधर लाज छोड़कर न घूमे, शारीरिक परिश्रम अवश्य करे, नाटक-सिनेमा कभी न देखे, गन्दे चित्रों और पुस्तकोंका अवलोकन न करे, स्त्रियोंसे परस्पर विषयसम्बन्धी चर्चा न करे, पुरुषोंके संसर्गसे सदा बचे, अकेली पुरुषोंके साथ न रहे, किसी भी पुरुषको गुरु बनाकर उसके चरण छूने, उसके अंगोंका स्पर्श करने,पैर दबाने, एकान्तमें उसके पास रहने आदिसे सावधानीके साथ अवश्य बचती रहे, फिर चाहे वह कितना ही बड़ा भक्त, महात्मा या त्यागी-संन्यासी ही क्यों न हो, विधवा स्त्री एकमात्र भगवान्‌को ही परम पति और परम गुरु माने, रातको कमरेमें अकेली या अन्य स्त्रियाँ हों तो उनके पास सोवे, घरमें शिशु हों तो एक-दो शिशुओंको अपने पास जरूर सुलावे; शृंगार न करे; नित्य भगवन्नाम-जप, इष्टपूजन, गीता-रामायणादि पाठका नियम रखे; सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय करे और हो सके तथा शरीर माने तो बीच-बीचमें चान्द्रायणादि व्रत भी करे। शारीरिक, वाचिक और

---

* हारीतसंहितामें आता है—

केशरञ्जनताम्बूलगन्धपुष्पादिसेवनम्‌ ।
भूषणं रंगवस्त्रं च कांस्यपात्रेषु भोजनम्‌॥

केश-रंजन करना, पान खाना, गन्ध-पुष्पादिका सेवन करना, आभूषण धारण करना, रंगीन वस्त्र पहनना और काँसीके बर्तनमें भोजन करना—इनका विधवाको त्याग करना चाहिये।

मानसिक तपोंका आचरण करे,* संन्यासी तथा ब्रह्मचारीके लिये सात्त्विक भोजन, मन-वाणीके संयम और सदाचारके जो नियम शास्त्रोंमें वर्णित हैं, विधवादेवी उनका पालन करे। इस प्रकार संयमित जीवन रखकर भगवद्भजन, शास्त्रचर्चा, हरिकथा, वैराग्य, त्याग तथा पातिव्रत्यकी महिमा बतलानेवाले ग्रन्थोंका पठन-अध्ययन, आध्यात्मिक सदुपदेशोंका श्रवण-मनन, भगवान्‌के विग्रहकी उपासना आदि करनेसे विधवाका जीवन साधनामय हो जायगा। उसे यहाँ सुख-शान्ति मिलेगी और अन्तमें मुक्ति।

(६) बाल-विवाह और वृद्ध-विवाहकी प्रथा बन्द कर देनी चाहिये। लड़कियोंका विवाह बहुत छोटी अवस्थामें नहीं करके अपने-अपने प्रान्तकी स्थितिके अनुसार रजस्वलासे पूर्व करना चाहिये और लड़कियोंमें धार्मिक शिक्षाका प्रसार अवश्य होना चाहिये, जिससे उनके जीवनमें सतीत्वका गौरव जाग्रत् होकर अक्षुण्ण बना रहे।

(७) विधवाओंकी धन-सम्पत्तिको देव-सम्पत्ति मानकर बड़ी ईमानदारीसे इसका संरक्षण करना चाहिये। विधवाके हकको मारना तथा उसकी सम्पत्तिपर मन चलाना और हड़पना महापाप है।

---

* श्रीमद्भगवद्गीताके सत्रहवें अध्यायमें बतलाया गया है—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

(१७। १४—१६)

'देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और ज्ञानी पुरुषोंका पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीर-सम्बन्धी तप कहा जाता है।'

'उद्वेग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक यथार्थ भाषण एवं स्वाध्यायका अभ्यास—यह वाणी-सम्बन्धी तप कहा जाता है।'

'मनकी प्रसन्नता, सौम्यता, ईश्वरका मनन, मनका निग्रह और अन्तःकरणकी भलीभाँति शुद्धि—यह मानस-सम्बन्धी तप कहा जाता है।'

विधवा नारीके सम्बन्धमें मनुमहाराज कहते हैं—

कामं तु क्षपयेद् देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।
न तु नामापि गृह्णीयात् पत्यौ प्रेते परस्य तु॥
आसीतामरणात् क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम्॥
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥

(मनु० ५।१५७-१५८, १६०)

'पतिकी मृत्यु हो जानेपर पवित्र पुष्प, फल और मूलादि अल्पाहारके द्वारा शरीरको क्षीण करे, परंतु व्यभिचारबुद्धिसे परपुरुषका नाम भी न ले।'

'साध्वी स्त्री एकमात्र पतिपरायणा (सावित्री आदि) नारियोंके अत्युत्तम (पातिव्रत) धर्मको चाहनेवाली होकर विधवा होनेके अनन्तर मनकी कामनाको त्याग दे और मृत्यु-कालपर्यन्त नियमोंका पालन करती हुई ब्रह्मचर्यसे रहे।'

'पतिके मरणके अनन्तर जो साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्यका पालन करती है, वह पुत्रहीन होनेपर भी ब्रह्मचारियोंके सदृश स्वर्ग (दिव्य) लोकमें जाती है।'

जो स्त्रियाँ इस प्रकार अपने धर्मका पालन न करके क्षणिक विषयसुखके लोभसे अपनेको इन्द्रियोंकी गुलाम बना लेती हैं, उनका भविष्य बिगड़ जाता है और वे महान् दुःखोंको भोगती हैं। उनका जीवन यहाँ तो दुःखमय हो ही जाता है, परलोकमें भी उन्हें महान् क्लेशोंका भोग करना पड़ता है। वे महापापी हैं, जो पवित्र विधवाओंको सतीधर्मसे च्युत करके पाप-पंकमें फँसाते हैं और उन बेचारी असहाय देवियोंको दुःखकी ज्वालामें जलानेके लिये बाध्य करते हैं।

२६ भारतीय नारी और राज्यशासन

भारतीय साहित्यके अनुशीलनसे यह पता लगता है कि प्राय: राजकुलकी स्त्रियाँ ज्ञान-विज्ञान और ललित-कलामें प्रवीण होनेके साथ ही राजनीति और युद्ध-कलाकी भी शिक्षा पाती थीं। कालिदासके शब्दोंमें नारी गृहिणी होनेके साथ पतिकी सचिवा भी थी। यह साचिव्य-कर्म तभी हो सकता है, जब उसे सभी तरहकी आवश्यक शिक्षा प्राप्त हो। भारतीय नारी अपने पातिव्रतको अक्षुण्ण रखकर ही अन्य विषयोंमें यथासाध्य पतिकी सहायता करती थी। उसमें पतिसे आगे बढ़कर अपनी शक्ति दिखानेकी स्पर्धा नहीं थी। उसका सम्पूर्ण ज्ञान पतिके कार्योंमें सहयोग देनेके लिये ही था। इस प्रकार जिस राजाका शासन बहुत उत्तम और न्यायानुकूल होता था, उसकी उस शासन-व्यवस्थामें राजमहिषीका भी सुन्दर परामर्श काम करता था। कितनी ही स्त्रियाँ अपने सहयोगसे पतिकी अयोग्यताको भी दूर करके उसे योग्य शासक बनाती थीं। रानी चूड़ालाका जीवन इसके लिये आदर्श है। भारतीय नारीको देवांगनाओंसे यह प्रेरणा प्राप्त होती थी। देवी दुर्गा तथा इन्द्र, वरुण आदिकी पत्नियोंमें नारीजनोचित गुणोंके साथ-साथ युद्ध और शासनकी भी पूर्ण क्षमता भारतीय स्त्रियोंको सदा वैसी बनानेके लिये प्रोत्साहन देती रही है। महारानी कैकेयीने महाराज दशरथके साथ युद्धमें जाकर जिस साहस और धैर्यका परिचय दिया, उससे केवल राजाको विजय ही नहीं मिली, समस्त नारी-जातिका भी गौरव बढ़ गया।

कहते हैं, महाभारत-युद्धमें जो राजा मारे गये थे, उनमेंसे जिन-जिनके कोई पुत्र नहीं था, उनके राज्य उनकी पुत्रियोंको दिये जायँ—ऐसा आदेश भीष्मपितामहने धर्मराज युधिष्ठिरको दिया था। नवीं शताब्दीमें उत्कलके राजा ललिताभरणदेवका देहान्त होनेपर

उनकी महारानी त्रिभुवनदेवीने ही राज्यका भार सँभाला और बड़ी योग्यताके साथ उसका निर्वाह किया। चन्द्रगुप्त प्रथम अपनी लिच्छिविवंशीया महारानी कुमारदेवीके साथ ही राज्यका शासन करते थे। उनके सिक्केपर दोनोंके नाम भी पाये जाते हैं। कौशाम्बीके राजा उदयन जब बन्दी बना लिये गये थे, उस समय उनकी माताने ही राज्यका पालन किया था। 'मसग' के नरेश जब समर-भूमिमें मारे गये उस समय उनकी रानीने सेनाका संचालन करके युद्धमें आक्रमणकारी सिकन्दरका सामना किया था। ईसवी सन्‌से दो-सौ वर्ष पूर्व दक्षिणके शातवाहन साम्राज्यकी रानी नयनिकाने अपने बालक राजकुमारके वयस्क होनेतक स्वयं ही राज्यकी देखभाल और शासन किया। चौथी शताब्दीमें विधवा रानी प्रभावती गुप्तने भी दस वर्षोंतक अपने राज्यकी रक्षा की थी। उस समय राजकुमार अभी बालिग नहीं हुए थे। काश्मीरकी रानी सुगन्धा और दिद्दाने भी वैधव्य-दशामें वर्षोंतक अपने देशका शासन किया था। सन् ११९३ ई० में जब पृथ्वीराजके साथ समरसिंह युद्धमें मारे गये उस समय कर्मदेवीने मेवाड़का शासनसूत्र अपने हाथमें लिया और कुतुबुद्दीनके आक्रमण करनेपर बड़ी योग्यतासे सैन्य-संचालन करते हुए उसका सामना किया था। गुजरातके सुलतान बहादुरशाहने जब चित्तौड़पर आक्रमण किया, उस समय राणा साँगाके मारे जानेपर उनकी प्रथम विधवा रानी कर्णवतीने घमासान युद्ध किया था। राणा साँगाकी द्वितीय पत्नी जवाहरबाईने भी दुर्गकी रक्षा करते हुए वीरगति प्राप्त की।

मराठोंके इतिहाससे सिद्ध होता है कि कोल्हापुरकी रानी ताराबाई, इछलकरनजीकी अनुबाई, इन्दौरकी अहल्याबाई तथा झाँसीकी विख्यात वीरांगना रानी लक्ष्मीबाईने बड़ी कुशलता, नीति और बहादुरीके साथ राज्य-शासन और युद्ध भी किया था। ताराबाईने कूटनीतिज्ञ औरंगजेबको पीछे खदेड़ा था। अनुबाईने अनेक बार शत्रुओंके दाँत खट्टे किये और लक्ष्मीबाईने तो संहारकारिणी दुर्गाकी भाँति शत्रुसेनाका संहार

किया था। उसने फिरंगियोंके छक्के छुड़ा दिये थे। दक्षिण भारतमें अनेकों ऐसे शिलालेख मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि नारियाँ शासन-कार्यमें क्रियात्मक भाग लेती थीं। सातवीं शताब्दीके मध्यभागमें चालुक्यवंशके राजा आदित्यकी महिषी विजय मदारिका बम्बईके दक्षिणमें राज्य करती थीं। उनका एक घोषणापत्र भी प्राप्त हुआ है। ७८६ ई० में राष्ट्रकूटोंके राजा ध्रुवकी रानी शील महादेवीने राज्यसिंहासनपर आरूढ़ होनेके बाद एक भूमिखण्ड पुरस्काररूपमें अर्पण किया था। १०५३ ई० में चालुक्य राजा सोमेश्वरकी महारानी मैलादेवी 'वनवासी' प्रान्तपर राज्य करती थीं। सोमेश्वरकी दूसरी रानी केटलादेवी पोनवदके अग्रहारकी शासिका थीं। जयसिंह तृतीयकी बड़ी बहिन अक्कादेवी १०२२ ई० में किसुकद जिलेपर राज्य करती थीं। १०७९ ई० में विजयादित्यकी बहिन कुंकुमदेवी कर्नाटकके धारवाड़ जिलेके अधिकांश भागपर शासन करती थीं। विक्रमादित्य षष्ठकी प्रधान महारानी लक्ष्मीदेवीके हाथमें १८ धर्मार्थ दातव्य संस्थाओंका शासनभार था। १३ वीं सदीमें प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलोने गुंटूर जिलेपर एक रानीको राज्य करते देखा था।

ऋग्वेदमें नारीके गृह, सास-ससुर, पति-ननद और देवरकी 'सम्राज्ञी' होनेका आशीर्वाद दिया गया है। यह साम्राज्य शासनके लिये नहीं, प्रेम और सद्व्यवहारके लिये है। इसीके द्वारा नारी सम्राट्के हृदयकी भी सम्राज्ञी बन जाती हैं।

२७ वृद्धा माताकी शिक्षा

माताकी अवस्था सत्तर वर्षसे कम नहीं है। उन्हें जब देखिये किसी काममें लगी हैं। कोई जाता है तो एक बार नेहभरी नजरसे देखकर मुसकरा देती हैं। कभी-कभी पूछ देती हैं—क्यों कैसे आये? प्रातःकाल एक मील जाकर गंगास्नान भी कर आती हैं। पूजाके दिनोंमें ठाकुरजीके लिये प्रसाद भी अपने हाथोंसे ही बनाती हैं। शिवरात्रिके दिन चौबीस घण्टे लगातार काम करते मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। दोपहरके बाद गाँवकी कई स्त्रियाँ उनके पास आ जाती हैं। वे हिन्दी न जाननेपर भी अपनी मातृभाषामें उनके उत्तर देती हैं। मैं उनका पता नहीं बताऊँगा—परंतु बातें उनकी ही लिखूँगा।

प्रश्न—हम स्त्रियोंको किसकी पूजा करनी चाहिये?

उत्तर—पूजा करनेयोग्य तो एकमात्र भगवान् ही हैं।

प्रश्न—भगवान्‌की किस मूर्तिकी पूजा करनी चाहिये?

उत्तर—स्त्रियोंके लिये तो भगवान्‌की मूर्ति दूसरी ही प्रकारकी निश्चित है। जैसे और लोगोंके लिये वैदिक और पौराणिक मन्त्रोंद्वारा भाँति-भाँतिकी मूर्तियोंमें भगवान्‌की प्रतिष्ठा—स्थापना होती है, वैसे ही स्त्रियोंके लिये विवाहके समय 'वर' में भगवान्‌की प्रतिष्ठा होती है। कन्याका समर्पण वररूपी विष्णुको होता है।

वरोऽसौ विष्णुरूपेण प्रतिगृह्णात्वयं विधिः।

इसलिये विवाहिता स्त्रियोंके लिये अपने पतिदेव ही भगवान् हैं। भगवान्‌की इसी मूर्तिकी उपासना करना स्त्रियोंका धर्म है।

प्रश्न—तब क्या स्त्रियोंको भगवान्‌की दूसरी मूर्तिकी पूजा नहीं करनी चाहिये?

उत्तर—दूसरी मूर्तियोंकी पूजाका निषेध नहीं है। हाँ, किसी-

किसी मूर्तिकी पूजाका तो निषेध भी है, परंतु दूसरी मूर्तियोंकी पूजा भी पतिदेवकी प्रसन्नता और सुखके लिये ही करनी चाहिये। उनसे भी यही प्रार्थना करनी चाहिये कि पतिदेवके चरणोंमें मेरा विशुद्ध प्रेम हो। पूजा भी उसी देवताकी होनी चाहिये, जिसमें पतिदेवकी अनुमति हो। इसलिये पतिपूजा ही स्त्रियोंका प्रधान धर्म है।

प्रश्न—जो फल भगवान्‌की पूजासे मिलता है, क्या वही फल पति-पूजासे भी मिल सकता है?

उत्तर—भगवान्‌की पूजामें भावकी प्रधानता है। मूर्ति-पूजा करते समय यदि यह भाव बना रहे, यह भगवान्‌की पूजा है तो पूजाका पूरा फल मिलता है। इसी प्रकार पतिदेवकी सेवा करते समय यदि यह याद रहे कि मैं भगवान्‌की सेवा कर रही हूँ और यह सोचकर प्रत्येक कार्य करते समय हृदय आनन्द, उछाह और चाहसे भरा रहे तो यह साक्षात् भगवान्‌की पूजा ही है। पुरुषके जीवनकी अपेक्षा स्त्रीके जीवनमें इसके लिये ज्यादा सुभीता है। यदि पतिदेवमें भगवान् होनेकी भावना निरन्तर न रहे तो बार-बार उसे स्मरण रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। थोड़े ही दिनोंमें वह भावना दृढ़ हो जायगी और जीवन आनन्दमय हो जायगा। यदि भगवान्‌की भावना न हो तो अपने स्वामीके रूपमें ही उनकी सेवा और आज्ञा-पालन करना चाहिये। दूसरे देवताओंकी पूजासे जो लाभ होता है वह पतिको भगवान् जाने बिना भी उनकी पूजा करनेसे होता है।

प्रश्न—आजकल तो स्त्रियोंकी प्रवृत्ति इसके विपरीत ही देखी जाती है, इसका क्या कारण है?

उत्तर—आजकल देशमें जिस शिक्षा और आदर्शका प्रचार हो रहा है, उसका आधार धार्मिक भाव नहीं है। वह एक ऐसे देश और जातिकी नकल है, जिसमें भगवान्‌की पूजा और अपने असली कल्याणपर नजर ही नहीं रखी जाती। उनका लक्ष्य भौतिक सुख है और वे केवल मनको अच्छे लगनेवाले इन्द्रियोंके भोगोंमें ही लगे

हुए हैं। वे जो कुछ करते हैं उसमें अधिकांश धर्मभावनाके विपरीत ही होता है। यही कारण है कि उन देशोंमें प्राय: सतीधर्मका अभाव देखा जाता है। परिवारमें अशान्ति, घरमें अशान्ति और पति-पत्नीमें अशान्ति, बात-बातपर तलाक और मुकदमेबाजी—यह उनकी सभ्यताका लक्षण है। यह सब झगड़ा भगवान्‌को भूलने और उस भावनाको छोड़ देनेका फल है। हिन्दू-स्त्रियोंके लिये उनका अनुकरण—न केवल स्त्रियोंके लिये बल्कि समस्त धार्मिक समाज, मानव-समाजके लिये घातक है; परंतु आज परलोक और परिणामपर कौन दृष्टि डालता है। लोग क्षणिक सुखकी ओर ही देखते हैं, ऊपर-ही-ऊपर देखते हैं। यही कारण है कि आजकल स्त्रियोंकी प्रवृत्ति भी दूसरी ही ओर हो रही है।

प्रश्न—इससे रक्षा कैसे हो?

उत्तर—धर्मभावनाकी वृद्धि ही एकमात्र रक्षाका उपाय है। धर्मकी पूर्णता सब जगह भगवान्‌के दर्शनमें है। एक जगह दृढ़ भावनासे ही सब जगह भगवान्‌के दर्शन होते हैं। वही महापुरुष है, वही मूर्ति है, वही पति है। यदि स्त्री अपने पतिमें भगवान्‌की दृढ़ भावना कर ले तो उसे सब जगह भगवान्‌की भावना और दर्शन होने लगें। ऐसी स्थिति प्राप्त होनेपर फिर किसी प्रकारकी अशान्तिकी सम्भावना नहीं रहती। इसीसे स्त्रियोंके धर्म, देश और जातिकी रक्षा सहज ही हो सकती है।

२८ नर-नारीके जीवनका लक्ष्य और कर्तव्य

नर हो या नारी—मनुष्य-जीवनका परम और चरम लक्ष्य है भगवत्प्राप्ति* या मुक्ति। समस्त दुःख, क्लेश, समस्त बन्धन और सब प्रकारके अभावोंकी आत्यन्तिक निवृत्तिका नाम ही मुक्ति है। इस मुक्तिको लक्ष्यमें रखकर ही मनुष्यको मुक्ति प्राप्त करनेके उपायस्वरूप धर्मका साधन करना चाहिये। जो कार्य भगवत्प्राप्तिके अनुकूल है, वही धर्म है और जो प्रतिकूल है, वही अधर्म है। धर्म कर्तव्य है और अधर्म त्याज्य। इस धर्मका साधन होता है बुद्धि, मन और इन्द्रियोंके सम्यक् शास्त्रीय व्यवहारसे। अतएव इसमें शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक और मानसिक समृद्धि और जीवन-निर्वाहके योग्य कार्योंकी उपेक्षा नहीं है; वरं जीवनोपयोगी समस्त कार्योंको मोक्षोपयोगी बनाकर ही मुक्ति-पथपर अग्रसर होना है। इसलिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चतुर्विध पुरुषार्थ हैं। मोक्षके अनुकूल धर्म हो, धर्मसम्मत अर्थ हो और जीवन-धारणोपयोगी धर्मसम्मत ही कामोपभोग हो। धर्मसम्मत अर्थ और काम वही होगा, जो मोक्षके अनुकूल हो और वह अपने साथ ही समस्त परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व—किसीका भी परिणाममें अहित करनेवाला न होकर सबका हित करनेवाला हो।

---

* इन्द्रिय और उनके भोगोंका ज्ञान तो सभी योनियोंमें है; परंतु सदसत्‌का विवेक केवल मनुष्योंमें ही है। पशुको डण्डेके भयसे विषयभोगसे हटाया जा सकता है, विषयोंका दोष समझाकर नहीं। मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो विवेकके द्वारा भगवद्विमुख, विषय-भोगके दोष और भगवत्प्राप्तिके महत्त्वको समझता है और उसीको जीवनका परम लक्ष्य बनाता है। जो मनुष्य भगवत्प्राप्तिको जीवनका लक्ष्य नहीं बनाता वह तो पशुसे भी गया-गुजरा है। पशु तो बेचारा विवेक न होनेके कारण इस बातको नहीं समझता, परंतु मनुष्य तो विवेकका दुरुपयोग करता है।

इसी दृष्टिसे वर्णाश्रमका निर्माण और प्रत्येक व्यक्तिके लिये शास्त्रोंमें तदनुकूल कर्तव्य-कर्मका आदेश है। उद्देश्य—एकमात्र भगवत्प्राप्ति अर्थात् ऐहिक-पारलौकिक सात्त्विक सुख-सम्पत्ति तथा शान्तिका उपभोग करते हुए अन्तमें समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर सच्चिदानन्दघन परमात्मस्वरूपमें अखण्ड स्थिति और साधन है। एकमात्र इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये भीतरी-बाहरी जीवनका सम्यक् नियन्त्रण और नियोजन करते हुए श्रद्धा तथा निष्ठापूर्वक स्वधर्मका पालन।

नरकी भाँति नारीको भी भगवत्प्राप्ति करनी है, परंतु उसके लिये साधनका स्वरूप नरके साधनकी अपेक्षा विलक्षण है। नारीका स्वधर्म नरके स्वधर्मसे पृथक् है। पृथक् न हो तो वह परिवार, समाज और राष्ट्रमें विशृंखलता उत्पन्न करनेवाला हो जाय एवं परिणाममें उनका अहितकारी होनेसे धर्म न रहकर 'अधर्म' बन जाय। इसलिये नरका निर्माण, संरक्षण और संवर्धन नारी ही करती है। नारी यदि इस स्वधर्मसे च्युत हो जाय और नरके धर्मको ग्रहण करने लगे तो नरका अस्तित्व ही नहीं रहे। फलत: नारीका अस्तित्व भी संकटापन्न हो जाय। नर-नारी दोनोंको लेकर ही विश्व और विश्वके समस्त धर्मोंका अस्तित्व है। ये न रहें तो विश्व ही न रहे। अतएव नारीको स्वधर्ममें स्थित रहकर ही अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होना है। इसीलिये नरकी जननी, नरकी सहधर्मिणी, नरकी संरक्षिका नारी घरमें रहती है और इसीलिये वह पतिमें भगवद्बुद्धि करके अपनी चित्तवृत्तिको सर्वथा भगवत्स्वरूपाकार बनाकर अन्तमें समस्त बन्धनोंसे छूटकर पतिलोकको अर्थात् भगवान्‌के दिव्यधामस्वरूप मुक्तिको सहज ही प्राप्त हो जाती है।

पतिको परमेश्वररूपसे माननेका यही अभिप्राय है कि नारी घरमें रहकर नरका निर्माण, संरक्षण और संवर्धन करती हुई भगवत्संकल्परूप विश्वकी सेवाके द्वारा भगवान्‌की सेवा करे और 'पति परमेश्वर है,' 'पतिसे विवाह परमेश्वरसे विवाह है,' 'पतिका सान्निध्य परमेश्वरका सान्निध्य है,' 'पतिका घर परमेश्वरका मन्दिर है,' 'पतिकी सेवा परमेश्वरकी सेवा है,' 'पतिका आज्ञापालन परमेश्वरका आज्ञापालन

है,' 'पतिको सुख पहुँचानेकी चेष्टा परमेश्वरकी प्रसन्नताका हेतु है' और 'पतिको सर्वस्व-समर्पण परमेश्वरको सर्वार्पण है'—इस प्रकार बार-बार चित्तकी वृत्तिको पतिके व्याजसे परमेश्वरमें लगाती हुई तद्‌गतचित्त, तद्‌गतबुद्धि और तदात्मा होकर अन्तमें परमेश्वरको प्राप्त कर ले। नियम यही है। श्रीभगवान्‌ने गीतामें कहा है—

तद्‌बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥

(५।१७)

'जिनकी बुद्धि और जिनका मन तद्रूप (परमात्मरूप) हो गया है, जिनकी निष्ठा उन परमात्मामें ही है, ऐसे तत् (परमात्म) परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्तिरूप मुक्तिको प्राप्त करते हैं।'

पतिव्रताकी ठीक यही स्थिति होती है। वह एक पतिके सिवा अन्य किसीको जानती ही नहीं और सब प्रकारसे पतिके साथ घुल-मिलकर एक हो जाती है। इसीसे पतिव्रताका आदर्श ही भक्तिका सर्वोत्तम आदर्श माना गया है और इसीसे पतिव्रताके सामने समस्त देवता सिर झुकाते हैं।

पतिव्रता स्त्री पतिसे अभिन्न होती है। मनुमहाराजने कहा है—"जो भर्ता है, वही भार्या है,—'**यो भर्ता सा स्मृतांगना**' (९।४५) और दोनोंको मरणपर्यन्त परस्पर अनुकूल रहकर अर्थ-धर्म-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्गको प्राप्त करना चाहिये—स्त्री-पुरुषोंका संक्षेपमें यही परम धर्म है।"

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥

(९।१०१)

शिशुपालन, गृहरक्षण आदि छोटे काम हैं और लेख लिखना, व्याख्यान देना, दफ्तरोंमें नौकरी करना बड़ा काम है—ऐसा मानना भूल है। वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो जितने महत्त्वका काम पहला है, उतना दूसरा है ही नहीं। फिर कामकी लघुता-महत्ता तो मनकी भावनाके अनुसार हुआ करती है। चर्खा कातनेको लोग बहुत छोटा काम समझते थे और बड़ी-

बूढ़ी स्त्रियाँ ही फुरसतसे इस कामको किया करती थीं; परंतु पिछले दिनों जब श्रीगाँधीजीने इसके महत्त्वकी घोषणा की तब पण्डित मोतीलाल नेहरू, पण्डित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय और श्रीचित्तरंजनदास-सरीखे आजीवन कलम चलानेवाले लोगोंने भी चर्खा चलाया और उनकी बड़ाई हुई। इस प्रकार स्वधर्ममें निष्ठा और उपादेय बुद्धि होनेपर स्वतः ही वह महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

इस समय जो स्वधर्म-पालनमें शिथिलता और परधर्म-पालनमें उत्साह दिखायी देता है, इसका कारण है भारतीय ऋषि-मुनिप्रणीत शिक्षासे पराङ्मुखता। आजका भारत अपनी पुनीत प्राचीन शिक्षासे वंचित है और नवीन विपरीत ज्ञान उत्पन्न करनेवाली पर-शिक्षासे अभिभूत है। वह सीखा है—

(१) संसारमें क्रम-विकास होता है अर्थात् संसारकी सभी बातोंमें उत्तरोत्तर उन्नति होती है, (२) कुछ ही हजार वर्ष पहलेका कोई इतिहास नहीं प्राप्त होता, (३) आर्य इस देशके निवासी नहीं थे और (४) धर्म समयानुसार बदलनेवाली चीज है। इसका परिणाम स्वाभाविक ही यह हुआ कि उसकी अपने गौरवमय अतीतसे, अपने त्रिकालज्ञ, सर्वविद्या-विशारद, अलौकिक बुद्धिसम्पन्न, महान् तेजस्वी, सर्वविधसम्पन्न, पूर्व पुरुषोंसे अपने प्राचीन सुख-समृद्धि और ज्ञानैश्वर्यपूर्ण स्वदेशसे और त्रिकालाबाधित धर्मसे श्रद्धा उठ गयी। वह समझने लगा कि 'पहले सर्वथा अवनति थी , क्रम-क्रमसे उन्नति हुई है। इस समय जैसी उन्नति है, वैसी पहले कभी नहीं थी। अतएव सुख-समृद्धिमें, ज्ञान-विज्ञानमें, विद्या-बुद्धिमें, प्रभाव-ऐश्वर्यमें आजका मानव जितना उन्नत है, उतने न तो कभी हमारे पूर्वपुरुष उन्नत थे, न देश उन्नत था और न संस्कृति उन्नत थी। बल्कि जितना ही पुराना काल था, उतनी ही अधिक अवनति थी; वेद, पुराण, महाभारत, रामायण आदि जितने ग्रन्थ हैं, वे सब इतिहास-युगके अर्थात् चार हजार वर्षसे इधर-उधरके लिखे हुए हैं और वे सभी प्रायः काव्य हैं—कविके मस्तिष्ककी उपज हैं, अतएव उनमें जो लाखों-

करोड़ों वर्षों पहलेका गौरवमय वर्णन है वह मिथ्या है। (बल्कि कई विद्वान् कहलानेवाले लोग तो चार हजार वर्ष पहलेके कालको वेदकाल और पन्द्रह सौ वर्ष पहलेके कालको रामायण-काल या रामराज्यका काल मानते हैं।) धर्म सामाजिक नियम है और समाजकी परिस्थितिके अनुसार बदलनेवाला है। धर्मशास्त्रोंमें जो विधि-निषेधका वर्णन करके उनका पारलौकिक फल बतलाया है, वह लोगोंको नियन्त्रणमें रखनेके लिये कहा गया है। वस्तुतः वैसा होता नहीं है और इस देशमें आर्य कभी रहते ही नहीं थे। अतएव लाखों, करोड़ों वर्षोंका जो यहाँका वर्णन है एवं उसमें जो आर्यगाथाएँ हैं, वे सभी कल्पित हैं।

जब भारतने इस प्रकार समझा, तब उसकी अपनी संस्कृतिसे, अपने पूर्वपुरुषोंसे, अपने धर्मसे और अपने यथार्थ देशसे अनास्था हो गयी और वर्तमान उन्नत कहलानेवाले देशों और राष्ट्रोंको ही आदर्श मानकर वह तदनुकूल अपने जीवनका निर्माण करनेमें लग गया। जहाँ-जहाँ वर्तमान आदर्शसे उसको अपना आचरण या अपना आदर्श प्रतिकूल दिखायी दिया, वहीं-वहीं उसने सुधारकी आवश्यकता समझी, अर्थात् उस अपने आचरण और आदर्शको समूल नष्ट करके उसकी जगह वर्तमान उन्नत कहलानेवाले आचरण और आदर्शके स्थापनकी आवश्यकता समझी और तदनुसार प्रयत्नमें लग गया। इसी प्रयत्नको उसने देश-सेवा, मानव-सेवा और धर्मपालन समझ लिया; एवं इस प्रकार वह अपने सर्वनाशमें ही संरक्षण, अपने सांस्कृतिक रूपके आमूल परिवर्तनमें ही उन्नति या विकास समझकर उसीमें लग गया और उत्तरोत्तर उन्नतिकी धारणाके कारण आज भी उसीमें लग रहा है। आज प्राचीनका संहार और नवीनका स्थापन इसीलिये आँखें मूँदकर चल रहा है और इसीलिये नव-युग, नव-भारत, नव-जीवन, नव-धर्म और नव-निर्माणके नारे लग रहे हैं। आज सारा देश इसी प्रवाहमें प्रवाहित है और इसीसे भारतीय नारीके स्वरूपमें भी परिवर्तन हो रहा है; क्योंकि इस प्राचीन आदर्शके संहाररूप परिवर्तनमें ही मोहवश आजका नर और उसीके सदृश शिक्षा-प्राप्त नारी सच्चे

हृदयसे अपनी तथा देशकी उन्नति मान रही है। नैतिक और सांस्कृतिक दिशामें जिस नारीका स्थान सबसे ऊँचा था, उसीके लिये आज ये कहा जा रहा है कि 'भारतीय शास्त्रों, आचारों और प्रथाओंने नारीकी शक्तिको दबाया, उसे कुचला और उसका सर्वनाश कर दिया। अब नारी इस 'सर्वनाश' के दलदलसे निकलकर स्वतन्त्र और सुखी होगी, वस्तुतः आज उनकी उन्नतिका आदर्श है यूरोप। अतः वे यूरोपकी निन्दा करते हुए भी यूरोपके ही पदानुगामी होकर उसीका अन्धानुकरण कर रहे हैं।* इसीसे आज सर्वत्र अधिकारकी पुकार है। आज भारत सर्वथा आत्मविस्मृत है, वह मस्तिष्कसे गुलाम हो गया है, शरीर भले ही स्वतन्त्र हो, पर अन्तर तो दूसरोंके दासत्वको भलीभाँति स्वीकार कर चुका है। यही इस युगकी महान् देन है पुराने भारतवर्षको—आर्यावर्तको और सबसे प्रधान और सुसभ्य प्राचीन आर्यजातिको।'

भारतीय आदर्श है—कर्तव्यपालन और यूरोपका आदर्श है अधिकारप्राप्ति। कर्तव्यपालनमें सबके अधिकार अपने-आप ही सुरक्षित

---

* विचारशील विदेशी विद्वान् भारतीय हिन्दुओंकी प्राचीन सामाजिक रीतियोंपर मुग्ध होकर उनका गुणगान करते हैं, श्रीफ्रेडरिक पिनकाट महोदय कहते हैं—

"इस प्रकार मान लेनेमें कोई भी शंका नहीं हो सकती कि करोड़ों बुद्धिमान् पुरुष हजारों वर्षोंसे जिन सामाजिक रीतियोंको व्यवहारमें ला रहे हैं, उनके भीतर ऐसा कोई तत्त्व अवश्य होगा, जिसके कारण उन्हें हम मूर्खता या अत्याचार कहकर दोषपूर्ण नहीं ठहरा सकते। हिन्दुओंके सम्बन्धमें यह बात निःसंकोचरूपसे स्वीकार की जा सकती है; जिनके बारेमें मैक्समूलरने ठीक ही कहा है कि 'यह दार्शनिकोंकी जाति है।' यह निश्चित है कि हिन्दुओंकी समस्त धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था उनके शत-शतवर्षव्यापी गम्भीर चिन्तन तथा सावधानीसे लिपिबद्ध किये हुए अनुभवके फलस्वरूप है। हम अंग्रेजलोग उन्हें यान्त्रिक कलाओं तथा प्रयोगमूलक विज्ञानके विषयमें जो कुछ सिखा सकें, सामाजिक विज्ञानके विषयमें हम उन्हें कुछ भी नहीं सिखा सकते। जिनके समाजमें सुख-समृद्धि तथा शान्तिकी प्रतिष्ठा हो, ऐसे सभी उपायोंको हिन्दुओंने बहुत पहलेसे प्रकृतिके शाश्वत तथ्यके आधारपर स्थापित किये हुए सुव्यवस्थित विषयोंका रूप दे रखा है। उन सब विधानोंमें यदि हम अपने अपरिपक्व विचारोंको घुसेड़नेकी चेष्टा करें तो उससे हानिकी ही सम्भावना है। उसके परिणामस्वरूप हिन्दुओंमें भी परस्परविरोधी स्वार्थोंका वह बेतुका संघर्ष प्रारम्भ हो जायगा, जो हमारे यहाँकी निन्दनीय सामाजिक अवस्थाका निदर्शक है।"

रहते हैं और अधिकारकी छीना-झपटीमें किसीका भी अधिकार सुरक्षित नहीं है, क्योंकि अधिकार अन्धा होता है। वह केवल अपना ही स्वार्थ देखता है। उसे दूसरेके हितकी जरा भी परवा नहीं होती। इसके विपरीत कर्तव्य प्रकाशरूप होता है। वह परहितके लिये त्याग करता है। इसलिये सभीको उनके प्राप्य अधिकार अपने-आप मिल जाते हैं। कर्तव्य-त्यागके द्वारा सबकी रक्षा करता है और कर्तव्यशून्य अधिकार प्रहार करके सबका संहार करना चाहता है। इसीसे आज शासक-शासित, पूँजीपति-मजदूर, मालिक-नौकर, ब्राह्मण-अब्राह्मण, पड़ोसी-अड़ोसी, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य और भाई-भाई आदि सभीमें झगड़ा है और वह झगड़ा यहाँतक बढ़ा है कि आज 'दो देह एक प्राण' पति-पत्नीमें भी अधिकारका प्रश्न आ गया है। उसीसे यूरोप आदिमें जैसे मजदूरोंके यूनियन (संघ) हैं वैसे ही पत्नियोंके भी यूनियन बने हैं और जैसे मजदूर अपने अधिकारोंके लिये लड़ते हैं, माँगें पेश करते हैं, हड़ताल करते हैं, वैसे ही 'पत्नी-संघ' भी सामूहिकरूपसे पतियोंसे अधिकारकी माँग करता है।*

कर्तव्यपालनसे जो नारी घरकी सम्राज्ञी बनती है, घरमें सबपर एकच्छत्र शासन करती है, वही अधिकारकी चिन्तामें पड़कर कर्तव्यशून्य हो आज राजमार्गपर नारे लगाती फिरती है! याद रखना चाहिये कर्तव्यपालनमें त्याग है और त्यागसे ही नारीके अधिकारकी रक्षा होती है। नारों और आन्दोलनोंसे तो अधिकार छिनेगा ही।

पति पत्नीका अर्धांग है और पत्नी पतिका, दोनों मिलकर एक पूरा होता है। जरा विचारिये—यदि प्रत्येक आधा-आधा अपनी-

* अभी कुछ ही वर्षों पहलेकी बात है, ब्रिटेनके विवाहिता 'नारीसंघ' (Married Women's Union) ने एक नया आन्दोलन शुरू किया है। वहाँ तलाकके मुकद्दमोंमें व्यभिचारिणी स्त्रीके पतिको उस स्त्रीके प्रेमी पुरुषके द्वारा हर्जाना दिलाया जाता है। अब 'महिला-संघ' कहता है कि 'जो स्त्री दूसरोंके साथ चली जाती है, उसका तो कोर्ट मूल्य निर्धारित करता है, पर जो घरके कामोंमें पिसती है उसका कोई मूल्य नहीं। अतः हर्जानेकी प्रथा बिलकुल बन्द कर देनी चाहिये।' मतलब यह कि भगानेवाले बदमाशोंपर जो थोड़ा-बहुत हर्जानेका डर है, वह भी न रहे।

अपनी ओर खींचने लगें और जोर पड़नेपर यदि बीचसे कटकर दोनों आधे अलग-अलग हो जायँ तो क्या दशा होगी? दोनों ही मर जायँगे; पर इसके विपरीत यदि दोनों परस्पर दृढ़तासे सटे रहें, एक-दूसरेके सहायक रहकर परस्पर पुष्टि-तुष्टि करते रहें तो दोनों अत्यन्त सुखी रहेंगे और दोनोंकी एकतामें बड़ा विलक्षण सौन्दर्य और माधुर्य निखर उठेगा। संसारका काम भी तभी सुचारुरूपसे चलेगा।

पति और पत्नी दो पहिये हैं, जो गृहस्थकी गाड़ीको एक-दूसरेको समान बल और सहयोग देते हुए चलाते हैं, पर वे तभी ऐसा कर सकते हैं, जब दोनों पहिये दो ओर लगे हों और स्वस्थ तथा गतिशील हों। किंतु दोनों यदि एक ओर लगा दिये जायँ तो गाड़ी नहीं चल सकती और न एक पहिया कमजोर हो जाय या उसकी चाल रुक जाय तभी गाड़ी चल सकती है! आज लोग कहते हैं कि 'दोनोंके समान अधिकार हैं, इसलिये दोनोंको समान कार्य करने चाहिये।' पर वे यह नहीं सोचते कि दोनों समान कार्य करने लगेंगे तो जैसे दोनों पहिये एक ओर लगा दिये जानेपर गाड़ी उलट जाती है, वही दशा गृहस्थीकी होगी और दोनोंके एक ओर लगनेपर एक-दूसरेको समान बल मिलना असम्भव होनेसे दोनोंकी ही चाल बन्द हो जायगी तथा दोनों ही निकम्मे हो जायँगे।

इसीलिये विवाह-संस्कारके द्वारा गृहस्थके संचालनके लिये स्त्री-पुरुषरूपी दोनों पहिये—एक घरकी ओर तथा एक बाहरकी ओर जोड़ दिये जाते हैं। ये पहिये जुड़े कि गृहस्थकी गाड़ी चली और धर्म-सम्पादन आरम्भ हुआ। यही धर्म—दोनों ओर दोनोंके द्वारा अपने-अपने क्षेत्रके अनुकूल कार्य—स्वधर्म है और यही मोक्षोपयोगी है।

कहा जाता है कि पुरुष स्वतन्त्र है और स्त्री परतन्त्र है; परंतु यदि ध्यानसे देखा जाय तो पता लगेगा कि दोनों ही शास्त्र-परतन्त्र हैं। परतन्त्रताका स्वरूप पृथक्-पृथक् है। नारीके बिना पुरुष अधूरा है और पुरुषके बिना नारी अधूरी है। दोनोंका अविनाभाव-सम्बन्ध है। दोनोंको ही एक-दूसरेकी अनिवार्य आवश्यकता है। दोनोंमें ही परस्पर

सहकारिता, सहयोग और सौहार्द तथा एकात्मता होनी चाहिये। दोनोंमें जातिगत निन्दनीय दोष भी हैं और दोनोंमें जातिगत श्लाघ्य गुण भी हैं। इसके अतिरिक्त पूर्व-संस्कार तथा वर्तमान वातावरणके अनुसार व्यक्तिविशेषमें व्यक्तिगत दोष-गुण भी होते ही हैं। अतएव न तो सर्वथा निन्दा या प्रशंसाका पात्र पुरुष है और न नारी ही है। जो एककी निन्दा करके दूसरेकी प्रशंसा करते हैं, वे पक्षपात या भ्रमसे ही ऐसा करते हैं। जगत्‌की रचना ही प्रकृतिको लेकर हुई है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है, अतएव जगत्‌का कोई भी प्राणी त्रिगुणसे रहित नहीं है। विशेष-विशेष कारणोंसे किसीमें सत्त्व अधिक होता है तो किसीमें रजोगुण अथवा किसीमें तमोगुण। कोई भी प्राणी इनसे मुक्त नहीं है। फिर नर या नारी ही इनसे कैसे मुक्त होंगे। व्यवहारमें यदि हार्दिक प्रेम हो तो अपने-आप ही दोष-दर्शन नहीं होगा और फलतः एक-दूसरेके गुण देखनेसे सहज ही एक-दूसरेमें प्रेमकी वृद्धि होगी। यही पति-पत्नीका परम मनोहर प्रेम-सम्बन्ध है।

इन सब बातोंको समझकर ही हिन्दू-गृहस्थ (नर और नारी) अपने-अपने स्वधर्ममें स्थित रहते हैं और सुख-शान्तिपूर्वक जीवन बिताकर अन्तमें परमात्माको प्राप्त हो सकते हैं। यह याद रखना चाहिये कि जहाँ प्रेम है; वहीं आनन्द है; और जहाँ द्वेष है, वहीं दुःख है। प्रेम रहेगा तो जीवनमें सुख-शान्ति रहेगी ही। सुख-शान्तिमें मन अचंचल रहेगा। चंचलतारहित स्थिर मनसे ही भगवान्‌का चिन्तन होगा और उसीका परिणाम होगा—परम शान्ति, मुक्ति या भगवान्‌की प्राप्ति! भारतीय नर-नारी इस मुक्तिपथपर चलकर अपने जीवनको धन्य करें और सारे जगत्‌के सामने महान् आदर्श उपस्थित करें, तभी उनका और जगत्‌का कल्याण होगा। कल्याणमय भगवान् सबका कल्याण करें।

२९ हिन्दू-शास्त्रोंमें नारीका महान् आदर

कुछ लोग ऐसा कहते हैं और आजकल हमारी कुछ हिन्दू-देवियाँ भी अज्ञानवश ऐसा मानने तथा कहने लगी हैं, 'हिन्दू-शास्त्रोंमें नारीका बड़ा तिरस्कार किया गया है।' परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। हिन्दू-विवाह पवित्र धार्मिक संस्कार है, हिन्दू-नारी पतिकी अर्धांगिनी है, पतिपर उसका पूर्ण अधिकार है, वह भोग-सामग्री नहीं है, वह तो पवित्र संस्कारवती संसार-सागरसे तरकर मोक्षको प्राप्त करनेवाली और पतिको भी अपने पवित्र भावोंसे परमधाममें पहुँचानेवाली देवी है। असलमें नारीको भोगकी समग्री तो भारतेतर देशोंने ही माना है। इसीसे वहाँ बाहरी सौन्दर्यका मूल्य है और इसीसे जरा-सी अनबनमें पवित्र विवाह-बन्धन टूट जाता है। इस पाशविकताको वहाँ 'स्वतन्त्र प्रेम' कहा गया है। वह प्रेम केवल भोगतक ही सीमित है; इसीलिये वह कभी किसीसे और कभी किसीसे हो सकता है। इसीसे भारतेतर देशोंमें नारी न तो घरकी सम्राज्ञी है और न वह पतिकी अर्धांगिनी ही है। नारीके प्रति हिन्दू-शास्त्रोंके विचार बड़े ही ऊँचे, आदरणीय तथा नारी-जातिके गौरवको बढ़ानेवाले हैं। मनुमहाराजके नारी-जातिके सम्बन्धमें जो उदार तथा आदरपूर्ण उद्‌गार हैं, वे तो बड़े ही प्रभावशाली हैं। मनुके उन पवित्र उद्‌गारोंको पढ़कर यूरोपके नामी विद्वान् 'नीत्से' महोदय चकित हो गये थे और उन्होंने लिखा था—

'I know of no book in which so many delicate and kindly things are said of the woman as in the law-book of Manu, these old grayheads and saints have a manner

of being gallant to woman which perhaps cannot be surpassed'.

(Antichrist, pp.214, 15)

अर्थात् 'मनुस्मृतिको छोड़कर मेरे देखनेमें ऐसी कोई भी दूसरी कानूनी पुस्तक नहीं आयी; जिसमें स्त्रियोंके प्रति इतने अधिक ममतापूर्ण और दयापूर्ण उद्‌गार हों। इन प्राचीन सफेद बालोंवाले ऋषियों-सन्तोंका स्त्रियोंके प्रति सम्मानका ऐसा ढंग है कि उसका कदाचित् अतिक्रमण नहीं हो सकता।'

यहाँ हिन्दू-शास्त्रोंके नारी-सम्मान-सम्बन्धी विचारोंके कुछ श्लोक नमूनेके तौरपर दिये जाते हैं—

ऋग्वेद दशम मण्डलके पचासी सूत्रकी ऋषिका सूर्याने भगवान्‌से स्त्रियोंके सौभाग्यवती रहनेकी अभ्यर्थना की है और स्त्रीके प्रति कहा है—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

'वधू! तू ससुरालमें जाकर (अपने सद्व्यवहारसे) सास,ससुर, ननद (देवरानी-जेठानियों) के ऊपर आधिपत्य जमाकर सबकी सम्राज्ञी (महारानी) होकर रह।'

मनुमहाराजने कहा है—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥

(३।५५—५९)

परम कल्याण चाहनेवाले पिता, भाई, पति, देवर—इन सभीको चाहिये कि वे स्त्रियोंका सत्कार करें और उन्हें भूषण-वस्त्रादिसे अलंकृत करें। जिस परिवारमें स्त्रियोंका पूजन-सत्कार किया जाता है, वहाँ सम्पूर्ण देवता प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं (उस कुलको देवताओंका आशीर्वाद प्राप्त होता है) और जिस कुलमें स्त्रियोंका आदर-सत्कार नहीं होता, उस कुलकी सम्पूर्ण क्रियाएँ, सारे धर्म-कर्म निष्फल हो जाते हैं। जिस कुलमें बहिन, बेटी, बहू और माता आदि स्त्रियाँ दुःखी रहती हैं, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जिस कुलमें ये दुःखी नहीं रहतीं वह सदा वृद्धिको प्राप्त—उन्नत होता है। स्त्रियाँ उचित सम्मान न मिलनेके कारण जिन घरोंको शाप दे देती हैं, वे घर कृत्यासे सताये हुएकी भाँति सब ओर (धन-धान्य, सुख-सम्पत्ति, मान-प्रतिष्ठा, धर्म-कर्म) से नष्ट हो जाते हैं। इसलिये कल्याणकामी पुरुषोंको चाहिये कि वे सदा वस्त्र, आभूषण और उत्तम भोजनादिसे—अर्थात् इन सभी चीजोंकी इन्हें स्वामिनी बनाकर—इनका समादर करें और प्रत्येक शुभ अवसरों—उत्सवोंपर उनका भलीभाँति (विशेषरूपसे) सत्कार करें।

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः।
नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम्॥*

(३।५२)

'जो सगे-सम्बन्धी (पिता, भाई, ससुर और देवर आदि) मोहमें पड़कर नारीकी धन-सम्पत्ति, उसके बैल-घोड़े, गाड़ी आदि सवारियाँ और उसके गहने-कपड़े अपहरण करके स्वयं भोगते हैं, उससे अपनी

* 'नारीयानानि वस्त्रं वा' के स्थानपर 'स्वर्णयानानि वस्त्राणि' इस पाठभेदसे यही श्लोक 'आपस्तम्बस्मृति' में भी है। (देखिये ९। २६)

आजीविका चलाते हैं, वे पापबुद्धि मनुष्य भयानक अधोगतिको—नरकोंको प्राप्त होते हैं।'

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः।
ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः॥

(मनु० ८।२९)

'जो सगे-सम्बन्धी नारीके जीवित कालमें ही उसका धन हरण कर लें, उनको धार्मिक राजा चोरके समान दण्ड दे।'

सद्वृत्तचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतति धर्मतः॥

(व्यास० २।४७)

'सदाचारिणी पत्नीका त्याग करके पुरुष धर्मसे पतित होता है।'

मान्या चेन्म्रियते पूर्वं भार्या पतिविमानिता।
त्रीणि जन्मानि सा पुंस्त्वं पुरुषः स्त्रीत्वमर्हति॥

(कात्यायनस्मृति ३।१३)

'मान पानेयोग्य स्त्री यदि पतिके द्वारा अपमानित होकर पहले मर जाती है तो वह स्त्री तीन जन्मोंतक पुरुष बनती है और वह पुरुष तीन जन्मोंतक स्त्री।'

स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन।

(पराशरस्मृति ७।३७)

'स्त्री' वृद्ध और बालक—ये कभी दूषित नहीं होते।'

पतयोऽर्धेन चार्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः।
यावन्न विन्दते जायां तावदर्धो भवेत् पुमान्॥

(व्यासस्मृति २।१३)

'आधे देहसे पति और आधेसे पत्नी हुई है, यह श्रुति कहती है। जबतक पुरुष स्त्रीसे विवाह नहीं करता, तबतक वह आधा ही होता है।'

कर्म कुर्यात् प्रतिदिनं विधिवत् प्रीतिपूर्वतः।
सम्यग्धर्मार्थकामेषु दम्पतिभ्यामहर्निशम्॥

एकचित्ततया भाव्यं समानव्रतवृत्तितः।
न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम्॥

(व्याससमृति २। १७-१८)

'प्रतिदिन विधि और प्रीतिके साथ वैध कर्मोंको करे। स्त्री-पुरुष दोनों धर्म, अर्थ, कामोंमें रात-दिन भलीभाँति एकमन, एकव्रत और एकवृत्तिसे लगे रहें। स्त्रियोंके लिये पतिसे पृथक् धर्म, अर्थ, कामका कोई भी विधान नहीं है।'

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
श्रियः स्त्रियश्च लोकेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥

(मनु० ९। २६)

'सन्तानको जन्म देनेवाली होनेके कारण स्त्रियाँ महान् भाग्यशालिनी हैं, वे घरकी दीप्ति हैं, उनका वस्त्राभूषणोंसे सम्मान करना चाहिये। स्त्री और लक्ष्मीमें कोई भेद नहीं है।'

भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः।
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति १। ८२)

'पति, भ्राता, पिता, कुटुम्बी, सास, श्वशुर, देवर, बन्धु-बान्धव इस प्रकार स्त्रीके सभी सम्बन्धियोंका कर्तव्य है कि वे वस्त्राभूषणादिके द्वारा उसका पूजन-सत्कार करें।'*

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥

(मनु० २। १४५)

'दस उपाध्यायोंकी अपेक्षा आचार्य, सौ आचार्योंकी अपेक्षा पिता और हजार पिताओंकी अपेक्षा माताका गौरव अधिक होता है।'

---

* 'वसिष्ठस्मृति' में भी ऐसा ही वचन है।

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥

(पद्मपु०, सू० ७४।११)

'माता सर्वतीर्थमयी है और पिता समस्त देवताओंका स्वरूप है, इसलिये सब प्रकारसे यत्नपूर्वक माता-पिताका पूजन करना चाहिये।'

जनको जन्मदातृत्वात् पालनाच्च पिता स्मृतः।
गरीयान् जन्मदातुश्च योऽन्नदाता पिता मुने॥
तयोः शतगुणं माता पूज्या मान्या च वन्दिता।
गर्भधारणपोषाभ्यां सा च ताभ्यां गरीयसी॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणेश० ४०)

'जन्मदाता तथा पालनकर्ता होनेके कारण सब पूज्योंमें पूज्यतम जनक और पिता कहलाता है। जन्मदातासे भी अन्नदाता पिता श्रेष्ठ है। इनसे भी सौगुनी श्रेष्ठा और वन्दनीया माता है; क्योंकि वह गर्भधारण और पोषण करती है।'

पुरुषाणां सहस्रं च सती स्त्री हि समुद्धरेत्।
पतिः पतिव्रतानां च मुच्यते सर्वपातकात्॥
नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा।
तया सार्धं च निष्कर्मी मोदते हरिमन्दिरे॥

(स्कन्दपुराण)

'सती नारी अपने सतीत्वबलसे सहस्रों मनुष्योंका उद्धार कर देती है। पतिव्रताका पति सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। पतिव्रताके तेजसे सतीके स्वामीको कर्मफलभोग नहीं करना पड़ता है। वह सारे कर्मबन्धनसे छूटकर सतीके साथ भगवान्‌के परमधाममें आनन्दलाभ करता है।'

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकलाजगत्सु।

(मार्कण्डेयपुराण)

'समस्त विद्या और समस्त स्त्रियाँ देवीके ही विभिन्न रूप हैं।'

या याश्च ग्राम्यदेव्यः स्युस्ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः।
कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः॥

(देवीभागवत)

'सभी ग्राम्यदेवियाँ और विश्वकी समस्त स्त्रियाँ प्रकृतिमाताकी ही अंशरूपिणी हैं।'

कृकल नामक एक वैश्य अपनी साध्वी पत्नी सुकलाको घरपर असहाय छोड़कर तीर्थयात्रा करने चले गये थे। उन्होंने अनेकों तीर्थोंमें भ्रमण किया। वहाँ श्राद्धादि सत्कर्म किये और यह समझा कि मैंने बड़े पुण्यकर्म किये हैं और मेरे सब पितरोंको दिव्य गति प्राप्त हो गयी है। इधर कृकलके पीछेसे सती सुकलापर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आयीं, उसकी बहुत कड़ी-कड़ी परीक्षाएँ हुईं; पर वह अपने सतीत्वके बलसे सारी विपत्तियोंसे तर गयी तथा सभी परीक्षाओंमें सफलता प्राप्त की। कोई भी न तो उसका बाल बाँका कर सका और न उसके सतीत्वपर जरा भी आँच आ सकी। बड़े-बड़े देवताओंकी शक्ति कुण्ठित हो गयी। उधर जब कृकल अपनी तीर्थयात्राकी सफलताका गर्व करते हुए लौटे, तब उन्होंने अपने पिता-पितामहोंको एक विशालकाय पुरुषके द्वारा बँधे हुए देखा। पूछनेपर उस पुरुषने—जो साक्षात् धर्म थे—बतलाया कि 'पत्नीका त्याग करके तुमने यह सब किया, इसीसे ये तुम्हारे पूर्वज बाँधे गये और इसीसे तुम्हारी तीर्थयात्रा सफल नहीं हुई।' धर्मने जो कुछ कहा उसका संक्षिप्त यह है—

पूतां पुण्यसमां स्वीयां भार्यां त्यक्त्वा प्रयाति यः।
तस्य पुण्यफलं सर्वं वृथा भवति नान्यथा॥
धर्माचारपरां पुण्यां साधुव्रतपरायणाम्।
पतिव्रतरतां भार्यां सुगुणां पुण्यवत्सलाम्॥
तामेवापि परित्यज्य धर्मकार्यं प्रयाति यः।
वृथा तस्य कृतं सर्वो धर्मो भवति नान्यथा॥

सर्वाचारपरा भव्या धर्मसाधनतत्परा।
पतिव्रतरता नित्यं सर्वदा ज्ञानवत्सला॥
एवंगुणा भवेद् भार्या यस्य पुण्या महासती।
तस्य गेहे सदा देवास्तिष्ठन्ति च महौजसः॥
पितरो गेहमध्यस्थाः श्रेयो वाञ्छन्ति तस्य च।
गंगाद्याः सरितः पुण्याः सागरास्तत्र नान्यथा॥
पुण्या सती यस्य गेहे वर्तते सत्यतत्परा।
तत्र यज्ञाश्च गावश्च ऋषयस्तत्र नान्यथा॥
तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च।
भार्यायोगेन तिष्ठन्ति सर्वाण्येतानि नान्यथा॥
पुण्यभार्याप्रयोगेण गार्हस्थ्यं सम्प्रजायते।
गार्हस्थ्यात् परमो धर्मो द्वितीयो नास्ति भूतले॥
मन्त्राग्निहोत्रं वेदाश्च सर्वे धर्माः सनातनाः।
दानाचाराः प्रवर्तन्ते यस्य पुंसश्च वै गृहे॥
एवं यो भार्यया हीनस्तस्य गेहं वनायते।
यज्ञाश्चैव न सिद्ध्यन्ति दानानि विविधानि च॥
नास्ति भार्यासमं तीर्थं नास्ति भार्यासमं सुखम्।
नास्ति भार्यासमं पुण्यं तारणाय हिताय च॥
धर्मयुक्तां सतीं भार्यां त्यक्त्वा यासि नराधम।
गृहधर्मं परित्यज्य क्वास्ते धर्मस्य ते फलम्॥
तया विना यदा तीर्थे श्राद्धदानं कृतं त्वया।
तेन दोषेण वै बद्धास्तव पूर्वपितामहाः॥
भवांश्चौरस्त्वमी चौरा यैश्च भुक्तं सुलोलुपैः।
त्वया दत्तस्य श्राद्धस्य अन्नमेवं तया विना॥
सुपुत्रः श्रद्धयोपेतः श्राद्धदानं ददाति यः।
भार्यादत्तेन पिण्डेन तस्य पुण्यं वदाम्यहम्॥

यथामृतस्य पानेन नृणां तृप्तिर्हि जायते।
तथा पितॄणां श्राद्धेन सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥
गार्हस्थ्यस्य च धर्मस्य भार्या भवति स्वामिनी।
त्वयैषा वञ्चिता मूढ चौरकर्म कृतं वृथा॥
अमी पितामहाश्चौरा यैश्च भुक्तं तया विना।
भार्या पचति चेदन्नं स्वहस्तेनामृतोपमम्॥
यदन्नमेव भुञ्जन्ति पितरो हृष्टमानसाः।
तेनैव तृप्तिमायान्ति संतुष्टाश्च भवन्ति ते।
भार्यां विना हि यो धर्मः स एव विफलो भवेत्॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड अ० ५९)

'जो पुरुष धार्मिक आचार और श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाली सद्गुणोंसे विभूषित, पुण्यमें अनुराग रखनेवाली तथा पवित्रहृदया पतिव्रता पत्नीको अकेली छोड़कर धर्म करनेके लिये बाहर जाता है; उसका किया हुआ सारा धर्म व्यर्थ हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो सब प्रकारके सदाचारमें संलग्न रहनेवाली, प्रशंसाके योग्य आचरणवाली, धर्मसाधनमें तत्पर, सदा पातिव्रत्यका पालन करनेवाली, सब बातोंको जाननेवाली तथा ज्ञानकी अनुरागिणी है, ऐसी गुणवती, पुण्यवती और महासती नारी जिसकी पत्नी हो, उसके घरमें सर्वदा देवता निवास करते हैं। पितर भी उसके घरमें रहकर निरन्तर उसके कल्याणकी कामना करते रहते हैं। गंगा आदि पवित्र नदियाँ, सागर, यज्ञ, गौ, ऋषि तथा विविध तीर्थ भी उस घरमें मौजूद रहते हैं। पुण्यमयी पत्नीके सहयोगमें गृहस्थधर्मका पालन अच्छे ढंगसे होता है। इस भूमण्डलमें गृहस्थधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिसके घरमें साध्वी स्त्री होती है , उसके यहाँ मन्त्र, अग्निहोत्र, सम्पूर्ण वेद, सनातन धर्म तथा दान एवं आचार सब मौजूद रहते हैं। इसी प्रकार जो पत्नीसे रहित है, उसका घर जंगलके समान है। उसके किये हुए यज्ञ तथा भाँति-भाँतिके दान सिद्धिदायक नहीं होते। साध्वी पत्नीके समान कोई

तीर्थ नहीं है, पत्नीके समान कोई सुख नहीं है तथा संसारसे तारनेके लिये और कल्याण-साधनके लिये पत्नीके समान कोई पुण्य नहीं है। जो अपनी धर्मपरायणा सती नारीको छोड़कर चला जाता है, वह मनुष्योंमें अधम है। गृह-धर्मका परित्याग करके तुम्हें धर्मका फल कहाँ मिलेगा? अपनी पत्नीको साथ लिये बिना जो तुमने तीर्थमें श्राद्ध और दान किया है, उसी दोषसे तुम्हारे पूर्वज बाँधे गये हैं। तुम चोर हो और तुम्हारे ये पितर भी चोर हैं; क्योंकि इन्होंने लोलुपतावश तुम्हारा दिया हुआ श्राद्धका अन्न खाया है। तुमने श्राद्ध करते समय अपनी पत्नीको साथ नहीं रखा था। इसीसे तुम्हारा यह कार्य व्यर्थ हुआ है। जो सुयोग्य पुत्र श्रद्धासे युक्त हो अपनी पत्नीके दिये हुए पिण्डसे श्राद्ध करता है, उससे पितरोंको वैसी ही तृप्ति होती है, जैसी अमृत पीनेसे—यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ। पत्नी ही गार्हस्थ्यधर्मकी स्वामिनी है; उसके बिना ही जो तुमने शुभ कर्मोंका अनुष्ठान किया है, यह स्पष्ट ही तुम्हारी चोरी है। जब पत्नी अपने हाथसे अन्न तैयार करके देती है, तब वह अमृतके समान मधुर होता है। उसी अन्नको पितर प्रसन्न होकर भोजन करते हैं तथा उसीसे उन्हें विशेष सन्तोष और तृप्ति होती है। अतः पत्नीके बिना जो धर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है।'

इन कुछ अवतरणोंसे सिद्ध है कि हिन्दू-शास्त्रोंने नारीका जैसा आदर किया है, वैसा जगत्‌में कहीं किसी धर्मने नहीं किया है। देवी तथा जननीके रूपमें कुमारी-अवस्थासे ही नारीकी पूजा हिन्दू-शास्त्रोंमें ही है। हिन्दू-शास्त्रका मर्म न समझकर अथवा शास्त्रानभिज्ञ मनमानी करनेवाले कुछ हिन्दू-पुरुषोंका नारियोंके प्रति असद्-व्यवहार देखकर हिन्दूधर्म तथा शास्त्रोंपर दोषारोपण करना सर्वथा अज्ञानमूलक है।